ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 2, अंक : 8,
जनवरी-मार्च 2018
मूल्य पचास रुपये

Dhingra Family Foundation
USA

कहाँ गई चिड़िया...?

अब ऐसे कोने रहे नहीं
जहाँ पक्षी आएँ
अपने घौंसला बनाएँ
अब तो बच्चे भी तरस गए
दादाजी, चिड़िया कहाँ गई
बच्चा पूछता रहा
हर बार एक सवाल
और मैं शराफ़त से
झूठ पर झूठ बताता रहा
बेटा वक़्त बदल रहा है
बहुत कुछ पाने के लिए
खोना पड़ता है
बहुत कुछ...
पोता कुछ समझा
और कुछ नहीं
भीतर जा कर
टेलीविजन देखने लगा
और उसमें बतियाने लगा
एनिमेटेड चिड़िया से
अच्छा तुम यहाँ हो
और मैं तुम्हें दादाजी के साथ
छज्जे पर देख रहा था
यू नॉटी चिड़िया
पोते को बात करता देख
इस चिड़िया से
मैं भीतर से रो रहा था
कि मैं अपने पोते को
चिड़िया भी दिखा ना सका...

-लालित्य ललित

शिवना प्रकाशन : जनवरी 2018 सेट में शामिल पुस्तकें

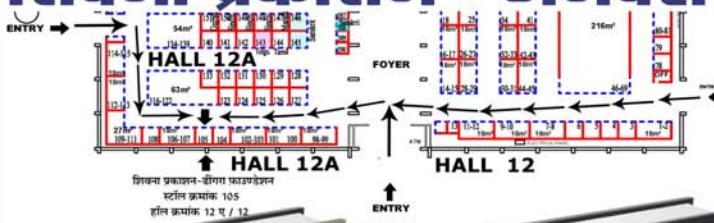

प्रगति मैदान पर आयोजित होने वाले नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2018 में "शिवना प्रकाशन-डींगरा फ़ाउण्डेशन" का स्टॉल हॉल क्रमांक 12 ए / 12 में स्टॉल क्रमांक 105 है। कृपया अवश्य पधारें।

विमर्श - नक़्क़ाशीदार केबिनेट
संपादक : पंकज सुबीर

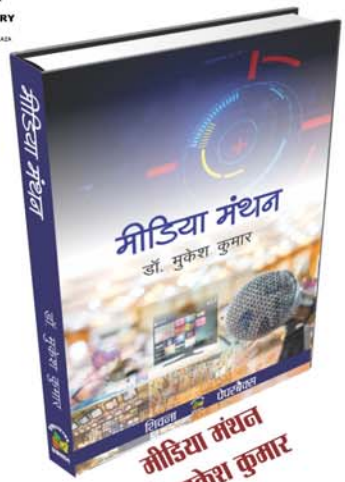

मीडिया मंथन
डॉ. मुकेश कुमार

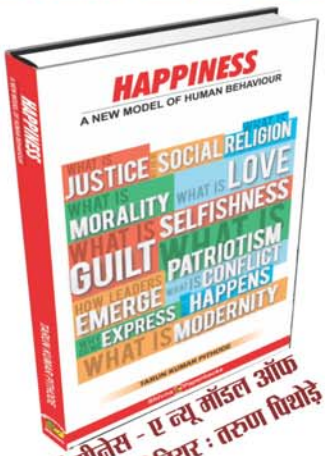

हैप्पीनेस - ए न्यू मॉडल ऑफ ह्यूमन बिहेवियर : तरुण पिथोड़े

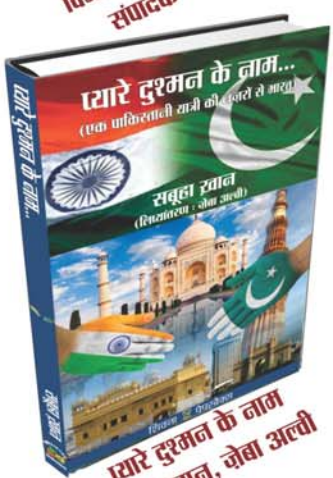

प्यारे दुश्मन के नाम
सबूहा ख़ान, ज़ेबा अल्वी

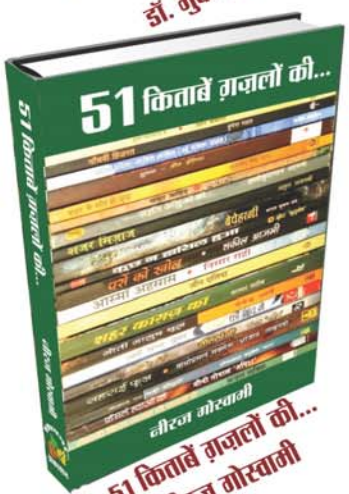

51 किताबें ग़ज़लों की...
नीरज गोस्वामी

तुम्हारे जाने के बाद
कृष्णकांत निलोसे

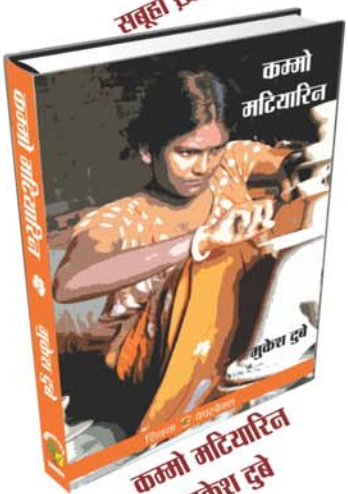

कम्मो मटियारिन
मुकेश दुबे

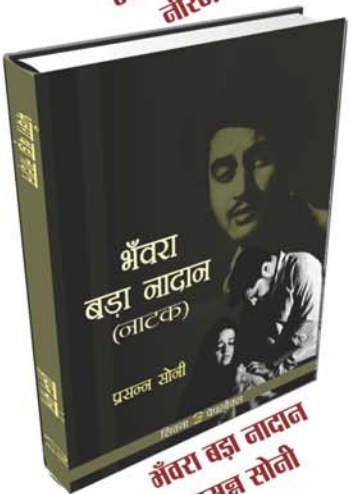

भँवरा बड़ा नादान
प्रसन्न सोनी

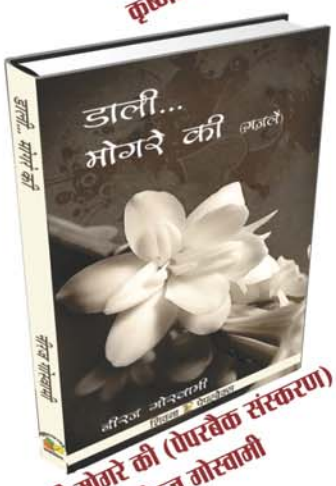

डाली मोगरे की (पेपरबैक संस्करण)
नीरज गोस्वामी

नई दिल्ली के प्रगति मैदान पर आयोजित होने वाले "नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2018" में लेखक मंच पर आयोजित कार्यक्रम में शिवना प्रकाशन के नए सेट की पुस्तकों का विमोचन किया जाएगा।

शिवना प्रकाशन कार्यक्रम
"पुस्तक विमोचन समारोह"
लेखक मंच, हॉल क्रमांक 12
दिनांक : 9 जनवरी 2018
समय : 12:45 से 2:15 तक
मुख्य अतिथि :
डॉ. प्रेम जनमेजय
अध्यक्षता :
डॉ. सुशील सिद्धार्थ
संचालन : शहरयार

***

विभोम-स्वर कार्यक्रम
"अनुवाद की आवाजाही हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी साहित्य के बीच"
लेखक मंच, हॉल क्रमांक 12
दिनांक : 12 जनवरी 2018
समय : 12:45 से 2:15 तक
मुख्य अतिथि :
सबूहा ख़ान (उर्दू)
अध्यक्षता :
तरुण पिथोड़े (अंग्रेज़ी)
वक्ता : गीताश्री (हिन्दी), प्रज्ञा (हिन्दी), ज़ेबा अल्वी (उर्दू)
संचालन : पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 2, अंक : 8

त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2018

RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

ISSN : 2455-9717

आवरण चित्र
पल्लवी त्रिवेदी

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

●

प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी

●

संपादक
पंकज सुबीर

●

कार्यकारी संपादक
शहरयार

●

सह संपादक
पारुल सिंह

●

आवरण चित्र
पल्लवी त्रिवेदी

●

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी

●

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'
http://shivnaprakashan.blogspot.in
फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'
https://facebook.com/shivna prakashan

●

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

बैंक खाते का विवरण :
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

कुछ यूँ...

आवरण कविता
कहाँ गई चिड़िया...? / लालित्य ललित
संपादकीय
शहरयार / 4
व्यंग्य चित्र
काजल कुमार / 5
आलोचना
नई सदी के हिंदी उपन्यास और किसान आत्महत्याएँ
डॉ. सचिन गपाट / 6
संस्मरण आख्यान
सुशील सिद्धार्थ / 9
विमर्श
गोदान के पहले
जीवन सिंह ठाकुर / 15
संस्मरण
अविस्मरणीय कुँवर जी
सरिता प्रशान्त पाण्डेय / 18
फिल्म समीक्षा के बहाने
मुज़फ्फरनगर
वीरेन्द्र जैन / 21
पेपर से पर्दे तक...
कृष्णकांत पण्ड्या / 22
पुस्तक-आलोचना
चौबीस किलो का भूत
अतुल वैभव / 26
नई पुस्तक
हसीनाबाद / गीताश्री / 30
गूदड़ बस्ती / प्रज्ञा / 30
समीक्षा
उर्मिला शिरीष /
चौपड़े की चुड़ैलें / पंकज सुबीर / 32
अशोक अंजुम /
सच कुछ और था / सुधा ओम ढींगरा / 34
मुकेश दुबे /
बंद मुट्ठी / डॉ. हंसा दीप / 35
राम रतन अवस्थी /
बातों वाली गली / वंदना अवस्थी दुबे / 37
डॉ. ऋतु भनोट /
जोखिम भरा समय है / माधव कौशिक / 39
प्रतीक श्री अनुराग /
संतगिरी / मनोज मोक्षेंद्र / 41

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

संपादकीय

आइए मेला घूमने चलते हैं...

शहरयार

shaharyarcj@gmail.com
+91-9806162184

नई दिल्ली का विश्व पुस्तक मेला धीरे-धीरे कुंभ के मेले की तरह होता जा रहा है। देश भर से साहित्यिक जमातें दिल्ली का रुख़ कर यात्रा करने लगती हैं। चर्चाएँ, विमर्श, विमोचन, बिक्री, विवाद, सब कुछ इस मेले में होता है। नई दिल्ली का यह विश्व पुस्तक मेला अब एक ज़रूरी आयोजन की तरह होता जा रहा है। साहित्य के लिए कठिन से और कठिन होते जा रहे इस समय में यह मेला मानों संजीवनी का काम करता है। संजीवनी इसलिए कहा रहा हूँ क्योंकि यह लेखक और प्रकाशक दोनों के लिए आँखें खोलने वाला अनुभव होता है। यह पाठक के साथ सीधे संवाद का अवसर होता है। पाठक की मनोदशा को, उसके बदली / बदलती हुई पसंद को जानने का अवसर होता है। पाठक के लिए भी एक अवसर होता है कि वह जान पाए, समझ पाए कि इन दिनों क्या रचा जा रहा है, क्या लिखा जा रहा है। विश्व पुस्तक मेले को लेकर कई नकारात्मक बातें भी की जाती हैं, लेकिन मैं इसको लेकर सकारात्मक सोचता हूँ। हमारे जैसे छोटे शहरों के प्रकाशनों के लिए तो यह एक बड़ी दुनिया में प्रवेश जैसा होता है। पाठकों की एक बड़ी दुनिया में प्रवेश जैसा। पहले पुस्तक मेले में जाने के बाद हमने अपनी पुस्तकों में, उनकी साज-सज्जा में, उनके प्रस्तुतिकरण में बहुत परिवर्तन किया है। हमारे लिए वह अनुभव बहुत सीखने वाला अनुभव था। उसके बाद हमने जो कुछ परिवर्तन किए, उनका सकारात्मक परिणाम भी हमको प्राप्त हुआ। मेला शब्द उत्साह का परिचायक होता है। हम सबके बचपन की स्मृतियों में यह शब्द इतना रचा-बसा है कि हम इस शब्द को सुनकर ही उमंग से भर उठते हैं। जीवन के एकरस रूटीन को तोड़ कर कुछ अलग से समय में जीने का एक अवसर होता है मेला। अब वो मेले तो नहीं रहे, जो हमारे बचपन की स्मृतियों में बसे हैं। अब उनका समय बीत गया। अब के बच्चे मेलों में नहीं बल्कि मोबाइल-इंटरनेट के झमेलों में फँसे हैं। अब उनके पास मेलों के लिए समय ही नहीं है। मेलों के लिए समय नहीं है या शायद अपने ही लिए समय नहीं है। मेला हमारे अपने लिए ही होता था, हमें अपने आप को तरोताज़ा करने का एक अवसर होता था मेला। तनाव और परेशानियों को भूल कर कुछ समय केवल अपने लिए जीने का समय होता था मेला। जैसे ही मेला हमारे जीवन से विदा हुआ, वैसे ही झमेला हमारे सर पर लद गया। मेला हमें अकेला नहीं रहने देता था। मेला हमारा अकेलापन तोड़ने के लिए ही लगाया जाता था। एक बड़े संसार में जाकर अपने अकेलेपन को समाप्त करने का एक अवसर होता था मेला। और इन दिनों हम सब अकेले से और अकेले होते जा रहे हैं। होते ही जा रहे हैं क्योंकि हमने मेलों में जाना छोड़ दिया है। और मेलों ने भी हमें छोड़ दिया है, अकेला हमारी दुनिया में..।

मैंने प्रारंभ में एक बात कही कि पुस्तक मेले लेखक और प्रकाशक दोनों की आँखें खोल देने वाले होते हैं। बात यदि लेखक की ही की जाए, तो लेखक को भी पुस्तक मेलों में अवश्य ही जाना चाहिए। जिस प्रकार प्रकाशक को वहाँ से बहुत कुछ नया जानने को मिलता है, उसी प्रकार लेखक को भी मिलता है। जो भी रचनाकार होता है, वो अपनी रचना से बहुत प्रेम करता है। यह असल में माँ और संतान के बीच का प्रेम होता है। इसमें मोह अधिक होता है, यथार्थ कम होता है। मगर कई बार होता बिल्कुल उल्टा है। जो किसी रचनाकार को अपनी रचना होने के कारण पसंद आ रहा है, वह हो सकता है उसे पसंद न आ रहा हो, जिसके लिए वह रचा गया है, मतलब पाठक को। ऐसे में पुस्तक मेले में जाकर आपको यह तो जानने को मिलेगा ही कि आपकी रचना पर पाठक की प्रतिक्रिया क्या है, वह उसे ख़रीद भी रहा है अथवा नहीं ? यहाँ मैं ख़रीदने की बात जान-बूझकर कर रहा हूँ। असल में इन दिनों प्रकाशकों को, विशेषकर हिन्दी के प्रकाशकों को बार-बार इसी इल्ज़ाम का सामना करना पड़ रहा है कि वो पुस्तकें बेच-बेच के अपना घर भर रहे हैं, और लेखक को कुछ नहीं दे रहे हैं। या यह कि लेखक को बताया ही नहीं जा रहा है कि उसकी कितनी किताबें बिक गई हैं। ऐसे में लेखक स्वयं जाकर पुस्तक मेले में अपनी पुस्तक पर पाठकों का रिस्पांस देख सकता है। हो सकता है कि प्रकाशक सचमुच उसे जानकारी नहीं दे रहा हो और पाठक उसकी पुस्तक को हाथों-हाथ ले रहे हों। या यह भी हो सकता है कि इसके विपरीत स्थिति हो। हो सकता है कि उसकी पुस्तक सचमुच ही पाठकों को पसंद नहीं आ रही हो। दोनों ही परिस्थितियों में मेले में जाने का फायदा लेखक को ही होगा। यदि पुस्तक पर पाठकों का अच्छा प्रतिसाद आ रहा है, तो वह अपने प्रकाशक से प्रश्न कर सकता है और यदि पाठक पुस्तक को नहीं पसंद कर रहे हैं, तो उसे आत्मावलोकन करने के लिए एक संकेत तो होगा ही। थोड़ा तीखा इसलिए लिख रहा हूँ क्योंकि प्रकाशक होने के कारण बार-बार यह बात मुझे भी लेखकों की ओर से सुनने को मिलती है। बेईमान, धोखेबाज़, ठग कहा जाना भला किसको अच्छा लगता है? लेखक अपनी बात कह लेता है, लेकिन प्रकाशक की सुनने को तैयार नहीं होता। वह लेखक होता है इसलिए सुनी भी उसकी ही जाती है। ऐसे में विश्व पुस्तक मेले जैसे आयोजन असल में दूध का दूध और पानी का पानी करने के अवसर होते हैं, आइए मेला घूमने चलते हैं।

आपका ही

शहरयार

व्यंग्य-चित्र

काजल कुमार

kajalkumar@comic.com

आलोचना

नई सदी के हिंदी उपन्यास और किसान आत्महत्याएँ

डॉ. सचिन गपाट

भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि और किसान है। किसानों की उन्नति से ही देश की उन्नति संभव है। किसान पूरे देश का अन्नदाता है। वैश्वीकरण के दौर में उसकी भी स्थिति में सुधार होगा ऐसा लगा था। लेकिन आज के बाज़ारवादी दौर में वह हाशिए पर चला गया है। उसकी फ़सल सामाजिक समस्या बन गई है। उसे अपनी फ़सल का उचित मूल्य नहीं मिल रहा है। क़र्ज़ की समस्या से वह घिरा हुआ है। खाद, बिजली और पानी की समस्याएँ उसे परेशान कर रही हैं। उसका कई आयामों पर शोषण हो रहा है। आज़ादी के पहले शोषकों को किसान समझ सकता था। लेकिन आज उसका चालाकी से शोषण किया जा रहा है। इससे शोषकों को पहचानना भी मुश्किल हुआ है।

आज़ादी के इतने साल बीत जाने पर भी किसानों को न्याय नहीं मिल पा रहा है। वह समस्याओं के मकड़ जाल में घिरा हुआ है। कभी प्राकृतिक आपदाएँ तो कभी सरकारी नीतियों से वह परेशान हो रहा है। उसकी फ़सल को उचित मूल्य न मिलना भी आज एक गंभीर समस्या हो चुकी है। अच्छे बीजों की उपलब्धता और वितरण की असमानता की समस्या ने भी किसानों का जीना मुश्किल किया है। किसानों के लिए सारे हालात ऐसे हैं कि ''ज़िंदा कैसे रहा जाए ?'' इस स्थिति में वह फाँसी के फंदे को अपनाकर आत्महत्या कर रहा है। अब तक तीन लाख से अधिक किसानों ने आत्महत्याएँ की हैं। किसान आत्महत्या आज चिंता का विषय बना है और वह भी विशेषकर कृषिप्रधान देश में !

'भारत एक कृषि प्रधान देश है' यह उक्ति इतनी ज़्यादा चलन में आ गई की खेती, किसान और उससे जुड़े लोग सरकार की नीतियों में कहीं जगह नहीं पा सके। किसानों के संबंध में सरकार की घोषणाएँ या तो फाइलों में बंद हो जाती हैं या बिचौलियों तक ही सिमट कर रह जाती हैं। किसानों के संबंध में सरकार की योजनाएँ वैसे भी कारगर नहीं रही हैं फिर भी जो योजनाएँ बनाई गईं उसका क्रियान्वयन सही ढंग से नहीं हो पाया। परिणामस्वरूप खेती की नई-नई विधियों की जानकारी के अभाव में एवं दिन-प्रतिदिन खाद एवं बिजली के मूल्यों में बढ़ोत्तरी होने के कारण किसान खेती से लागत का मूल्य भी नहीं निकाल पाता हैं। आज किसानों के समक्ष अशिक्षा, ग़रीबी, भुखमरी एवं आत्महत्या जैसी अनेक समस्याएँ मुँह बाए खड़ी हैं। देश की लगभग आधी फीसदी से ज़्यादा आबादी सरकार और समाज दोनों के यहाँ हशिए पर है। अगर साहित्य की बात करें तो स्वतंत्रता के बाद किसान जीवन की समस्याओं को लेकर उस लेखन के कलेवर का अभाव है जो प्रेमचंद के यहाँ दिखता है। प्रेमचंद के बाद अनेक रचनाकारों ने किसानों की समस्याओं को लेकर उपन्यास लिखे हैं, उनमें समकालीन कथाकार शिवमूर्ति के उपन्यास 'आख़िरी छलाँग', संजीव का 'फाँस' तथा पंकज सुबीर का उपन्यास 'अकाल में उत्सव' उल्लेखनीय हैं।

शिवमूर्ति का 'आख़िरी छलाँग' किसान जीवन पर केन्द्रित उपन्यास है। जो प्रेमचंद की परंपरा की ही एक कड़ी दिखती है। 'आख़िरी छलाँग' उपन्यास का कथानक परस्पर उलझी हुई किसान जीवन की अनेक समस्याओं का जंजाल है। कथानक का आधार पूर्वी उत्तर प्रदेश का ग्रामांचल है। इसका नायक पहलवान एक किसान है। उसके सामने विरासत में मिली तथा नई विकास नीतियों के कारण निर्मित अनेक समस्याएँ हैं। वह अपनी सयानी बेटी के लिए दो साल से वर खोज रहा है, बेटे की इंजीनियरिंग की फीस का जुगाड़ नहीं हो रहा है, तीन साल से गन्ने का बकाया नहीं मिल रहा है, सोसायटी से खाद के लिए लिया गया क़र्ज़ चुकता नहीं हुआ है। हर दूसरे महीने में ट्यूबवेल के बिल की तलवार सिर पर लटक जाती है। ऐसी कई समस्याओं को पहलवान किसान के माध्यम से कथाकार ने अपने उपन्यास में उठाया है। शिवमूर्ति ग्रामीण रचनाकार हैं। उन्होंने किसानों की समस्याओं को समझा तथा उनकी समस्याओं को महसूस किया है। पहलवान महसूस करता है कि जैसे नहर के पेट भीतर सिल्ट भर जाती है उसी तरह किसान की तक़दीर में भी साल दर साल सिल्ट भरती जा रही है। अपनी किसान जीवन की समस्याओं से तंग आकर वह इस व्यवस्था से प्रश्न करता है कि ''सर हालत तो मर जाने के हैं। जिंदा कैसे रहा जाए। ''1

ज़मींदार के ज़माने में किसानों का शोषण किया जाता था, उसको जेठ की धूप में मुर्गा बनाया जाता था, कोड़े से पिटवाया जाता था। वह ज़मींदारों का ज़माना था। किन्तु आज इतने दिन बाद भी किसान की ज़िंदगी में बहुत कुछ नहीं बदला। उसका शोषण हो रहा है। पैसे वसूलने के लिए कानून का सिर्फ किसानों, मज़दूरों के लिए इस्तेमाल हो रहा है। किसानों के नए सिरे से होने वाले शोषण को अब तो पहचानना भी मुश्किल हो रहा है। इन परिस्थितियों के कारण किसानों के मन में घिरा अँधेरा बाहर के अँधेरे से भी ज़्यादा घना हो रहा है। इससे तंग आकर किसान पहलवान कहता है कि ''किसान के घर में जन्म लेकर न पहले कोई सुखी रहा है न आगे कोई रहेगा। इन्हीं परिस्थितियों में ज़िंदगी की नाव खेना है। ''2

किसानों की समस्याओं को अभिव्यक्त करते हुए शिवमूर्ति जी ने इतिहास और वर्त्तमान को सामने रखा है। उपन्यास मुख्य रूप से किसान जीवन की पेचीदगियों के प्रति सजग करता है। इसमे किसान जीवन से जुड़े सांस्कृतिक और धार्मिक संदर्भ भी मिलते हैं।

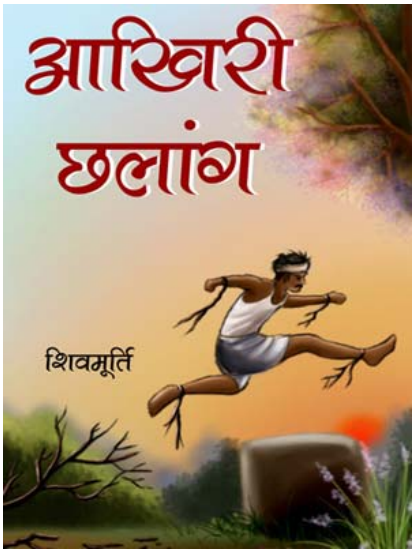

इसका आकार भले ही लघु हो लेकिन यह उपन्यास किसान जीवन की समस्याओं को व्यापकता के साथ प्रस्तुत करता है। यह केवल अवध की धरती पर ही नहीं बल्कि समूचे भारत में चेतना लाना चाहता है।

कथाकार संजीव ने अपने उपन्यास 'फाँस' में किसान जीवन की विभिन्न समस्याओं को उकेरा है। उन्होंने किसानों की मूलभूत समस्या खाद, पानी, बीज, बिजली की समस्या, प्राकृतिक समस्या, फ़सल का उचित मूल्य न मिलने की समस्या, क़र्ज़ की समस्या तथा आत्महत्या के कारणों को बड़े ही बेबाकी के साथ अपने उपन्यास में दिखाया है। उपन्यासकार ने क़र्ज़ की समस्या को अपने उपन्यास में इस तरह व्यक्त किया है- ''अगले महीने बैंक का 25 हज़ार का क़र्ज़ अदा करना है। आज गुढ़ी पाडवा है-मराठी नववर्ष।'' ..... ''फर्स्ट क्लास डिनर है आई। ''.... ''ये जो भात है न आई, इसमें स्टार्च है, इसका माड न फेंको तो चावल की सारी ताकत बची रहती है, फिर मावा ! मेवा है मेवा ! ताकत ही ताकत ! मज़बूती ही मज़बूती !''..... ''इसके सामने नासिक का किसमिश फेल, रत्नगिरि का हापुस फेल और कलमी के साग में आयरन ही आयरन। और स्वाद ?'' ..... शुभा सामने आकर खड़ी हो गईं तो झेंप गया पूरा परिवार ! शुभा ने तरस खाती जुबान से कहा -''आज नववर्ष है। आज तो कुछ कायदे की चीज़ बना लेती ! चलो मैं देती पूरण पोली !'' - ''नहीं वहिणी कोई तो दिन आएगा, हम भी पूरण पोली और ढेर सारा पकवान बनाएँगे। आज रहने दो।''

''मगर क्यों ?''

'वो सुनील काका ने कहा है न कि जब तक क़र्ज़ न उतार लो....।

''समझी। अरे तुम मियाँ - बीवी ! तुम्हें तपस्या करनी हो, शौक से करो, मगर मुलगियों को तो बख्श दो।''3

भारत का किसान जीवन भर ब्याज भरता रहता है तथा अपना क़र्ज़ पुत्र को विरासत में दे देता है। किसानों का दोहन अनवरत जरी रहे इस हेतु अंग्रेज़ों ने मालगुज़ारी जैसे तमाम अधिनियमों को क़ानूनी तौर पर वैधता प्रदान की। सरकार की आर्थिक नीतियाँ, भू-राजस्व की नई प्रणाली और प्रशासनिक व न्यायिक व्यवस्था ने किसानों की कमर तोड़ दी। प्रेमचंद के यहाँ जो क़र्ज़ की समस्या थी प्राय: वही समस्या आज भी मौजूद है लेकिन उसका स्वरूप बदल गया है। पहले ज़मींदार, साहूकारों के माध्यम से उनका शोषण होता था आज सरकारी दफ्तरों और बैंकों के माध्यम से।

सबका पेट भरने और ढकने वाले देश के लाखों किसानों और उनके परिवारों को जिनकी हत्या या आत्महत्या को रोक नहीं पा रहे हैं। 'फाँस' संजीव द्वारा किसान आत्महत्या पर केन्द्रित अनेक वर्षों के शोध का परिणाम है। फाँस ख़तरे की चिंगारी भी है और आत्महत्या के विरुद्ध दृढ़ आत्मबल प्रदान करने वाली चेतना भी।

किसान जीवन को ही केंद्र में रखकर पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास की रचना की है। इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन और विशेषत: किसानों की ज़िंदगी पर बहुत करीने से रोशनी डाली गई है। किसान की सारी आर्थिक गतिविधियाँ कैसे उसकी छोटी जोत की फ़सल के चारों ओर केन्द्रित रहती हैं और किन उम्मीदों के सहारे वे अपने आप को जीवित रखते हैं, यह उपन्यास का कथानक है। 'रामप्रसाद' के माध्यम से पंकज सुबीर बताते हैं कि आम किसान आज भी मौसम की मेहरबानी पर किस हद तक निर्भर है। मौसम के उतार-चढ़ाव के साथ ही किसानों की उम्मीदों का ग्राफ भी ऊपर-नीचे होता रहता है। किसान इन उतार-चढ़ाव के बीच अपने आप को कोसता रहता है। मैंने नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीर कर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है, कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किए, कभी तू छाँह में बैठा। उस पर यह अपमान और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अँधा हो गया था, मानो टूक-टूक उड़ गया है। 'अकाल में उत्सव' उपन्यास को समझने के लिए रामप्रसाद की देह को चीर कर देखना होगा कि उसकी लालसाएँ क्या हैं, कि उसके संघर्ष क्या हैं, कि वह अपनी जीवन-यात्रा के आख़िरी पड़ाव पर किन अनुभवों और विश्वासों के साथ उनका हो जाता है। रामप्रसाद एक छोटा आदमी है, किसान है, उसकी लालसा भी छोटी है।

'अकाल में उत्सव' में किसान जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं को भी कथाकार ने जगह दी है। किसानों की मूलभूत समस्या के.सी.सी. समस्या, प्राकृतिक समस्या तथा सरकारी मुआवज़ा जैसी समस्याओं को कथाकार ने बड़े ही गहराई के साथ चित्रित किया है। किसानों की फ़सल नष्ट होने पर मुआवज़ा न मिलने की समस्या को पंकज सुबीर ने अपने उपन्यास में बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है - ''लेकिन सर किसान तो सरकार के ही भरोसे है न ? अगर सरकार उसको मदद नहीं करेगी तो कौन करेगा ? खेतों में खड़ी फ़सल अगर बरबाद हो गई, तो किसान क्या करे, क्या मर जाए ?'' आगे सरकारी अफसरों के माध्यम से किसानों के प्रति सरकार का घिनौना चेहरा भी इस उपन्यास में प्रस्तुत

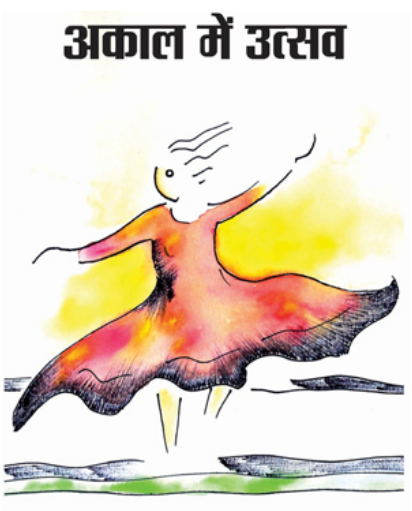

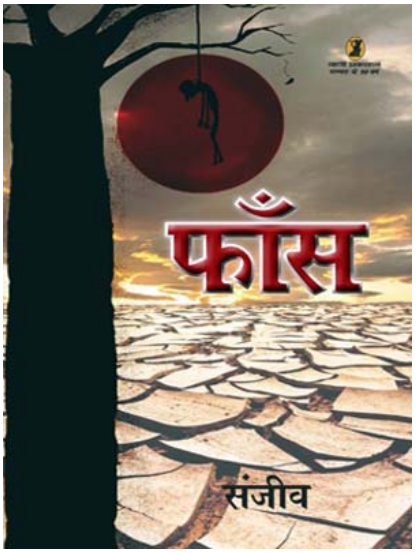

होता दिखाई पड़ता है-''तो मर जाए ? सरकार के भरोसे बैठा है क्या ? दुनिया में सब अपने-अपने भरोसे बैठे हैं। आपको किसने कहा है खेती करो ? मत करो अगर नुकसान का इतना ही डर है तो। जब कहा ही जाता है कि खेती तो मौसम के भरोसे खेला जाने वाला जुआ है, तो क्यों खेलते हो इस जुए को? किसी ने कहा है क्या आपसे? मत करो खेती कोई दूसरा काम करो।''4

'अकाल में उत्सव' में निरंतर समृद्धशील, सुविधासंपन्न, अत्याधुनिक हो रहे सभ्य मानवीय समाज में पशुओं से बदतर हताशा से भरा जीवन जीने को विवश किसान और मज़दूरों के लिए बार-बार उठने वाले सवाल को प्रखरता से उठाया गया है। वह हमें हमारे बदबूदार गिरेबानों में झाँकने को विवश करता है। यही रचना की ताकत है कि जब हम मूल मुद्दों से आँख मूँद लेते हैं तो वह अपने शंखनाद द्वारा हमें सजग कराती है।

किसान संघर्ष की गाथा को ये उपन्यास किसान के जीवन की विभिन्न समस्याओं को रेखांकित करते नज़र आते हैं। वर्तमान में उनकी सबसे बड़ी समस्या आत्महत्या की समस्या है जिसे उपन्यास में बड़े ही मार्मिक ढंग से दिखाया गया है बिज्जू की आत्महत्या को फाँस में इस प्रकार व्यक्त किया गया है ''आत्महत्या का कारण ....?''

''जन्मने और मरने के अलग-अलग कारण नहीं हुआ करते। वही फ़सल का नष्ट होना, वही ऋण, वही भावुकता....। ''5

इस प्रकार कह सकते हैं कि 21 वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान आत्महत्या का जो रूप दिखाई पड़ता है वह वास्तव में उसका एक प्रतिरूप मात्र है। असल ज़िंदगी किसानों की इससे भी बदतर दिखाई पड़ती है, परन्तु उपन्यासों में उनके जीवन की कुछ झलक दिखाई पड़ जाती है जो संवेदनाओं को झकझोरकर किसान जीवन पर सोचने के लिए मजबूर करती है। किसान आत्महत्या को उकसाने वाली पृष्ठभूमि को सामने लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य ये उपन्यास करते हैं। उपन्यासों में खेती की समस्या, क़र्ज़, दहेज़, बाज़ारवाद, सरकारी नीतियाँ, महँगाई, शोषण आदि किसान जीवन से जुड़ी समस्याओं का चित्रण हुआ है। 21 वीं सदी के उपन्यासकारों ने केवल यथार्थ को अभिव्यक्ति नहीं दी, बल्कि आशावाद को भी प्रकट किया है। किसानों को आत्महत्या की ओर ले जाने वाली स्थितिओं के विरोध में लड़ने के लिए ये उपन्यास सामाजिक संगठन पर बल देते हैं। इनमें किसान जीवन को सुधारने के लिए अनेक अंतरराष्ट्रीय संदर्भ भी दिए हैं। किसानों को अपने ऊपर मँडराते ख़तरे की आहट भी इन उपन्यासों में मिलती है। कुल मिलाकर भारतीय किसानों की आज की दशा और आत्महत्या के संदर्भ इन उपन्यासों में चित्रित हुए हैं। किसानों की दुर्दशा के लिए ज़िम्मेदार तत्व और किसान आत्महत्याओं की ज़मीनी सच्चाई नई सदी के इन उपन्यासों में यथार्थ रूप में प्रकट हुई है।

***

संदर्भ

1.शिवमूर्ति, आख़री छलाँग, उपन्यास, पृष्ठ सं.- 79, 2.वही, पृष्ठ सं.- 83

3.संजीव, फाँस, उपन्यास, पृष्ठ सं.- 61-62

4.पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, उपन्यास, पृष्ठ सं.-170

5.संजीव, फाँस, पृष्ठ सं.-150

6.वीर भारत तलवार - किसान, राष्ट्रीय आंदोलन और प्रेमचंद : 1918-1922

❐❐❐

सहायक आचार्य
हिंदी विभाग,मुंबई विश्विद्यालय
ई-मेल : sachin.hindi@mu.ac.in
मोबाइल : 9423641663

शिवना साहित्यिकी सदस्यता प्रपत्र

यदि आप शिवना साहित्यिकी की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा शिवना साहित्यिकी (SHIVNA SAHITYIKI) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को शिवना साहित्यिकी के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है :

Name of Account : **Shivna Sahityiki**, Account Number : **30010200000313**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero")
(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)
सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम :_____ **डाक का पता :**_____

_____ **सदस्यता शुल्क :**_____ **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**_____

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांसफ़र किया है) :_____ **दिनांक :**_____

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संस्मरण आख्यान

होता है शबोरोज़ तमाशा मिरे आगे (4)

सुशील सिद्धार्थ

न यादों का कोई क्रम होता है न संस्मरण का। और सच बात तो यह कि जीवन में भी जन्म और निर्वाण को छोड़कर बाकी घटनाओं का ही अक्सर कोई क्रम नहीं होता। लहरें हैं। कहीं से शुरू हो सकती हैं। तट से भी। मंझधार से भी। हवा के रुख़ पर बहुत कुछ निर्भर करता है। इस बार संस्मरण की घटनाओं का क्रम बदलते हुए कुछ 'प्रासंगिक' बातों का ज़िक्र कर रहा हूँ। हवा के रुख़ का अनुमान पाठक लगा लेंगे।

महान कथाकार व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल ने बहुत पहले ज्ञान चतुर्वेदी के लिए कहा था, 'आपकी स्फुट रचनाओं में बड़ी ताज़गी है और दर्जनों तथाकथित व्यंग्यकारों की कृतियों के विपरीत उनकी अपनी विशिष्टता भी। हिंदी जगत् यदि आपसे किसी बड़ी चीज़ की आशा करता है, तो यह सर्वथा उपयुक्त है।'

कहना न होगा कि श्रीलाल शुक्ल समेत हिंदी साहित्य ने ज्ञान चतुर्वेदी से जो आशा लगाई थी वह न केवल पूरी हुई बल्कि उसने रचनाशीलता के नए कीर्तिमान और प्रतिमान बनाए। ज्ञान जी ने व्यंग्य के विभिन्न रूपों प्रारूपों में अपनी कालजयी उपस्थिति का निरंतर एहसास कराया है। व्यंग्य लेख, व्यंग्यकथा...और इसके साथ ऐसे उपन्यास, जिन्होंने हिंदी कथा साहित्य को समृद्ध किया। केवल व्यंग्य साहित्य को नहीं। कुछ ऐसे पराक्रमी लेखक हैं, जो हिंदी व्यंग्य को कोई अज्ञात क़बीला मानकर उसमें रहते और हवाओं से जाने क्या-क्या कहते हैं। यह आश्वस्त करने वाली बात है कि ज्ञान चतुर्वेदी जैसे कुछेक 'व्यंग्यकार' हिंदी गद्य की विराट् परंपरा से जुड़ने में संकोच नहीं करते। हिंदी गद्य का वैभव जिनसे और महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जैसे बालमुकुंद गुप्त, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, मनोहरश्याम जोशी, नरेंद्र कोहली आदि से हुआ है।

प्रसंगवश कहता चलूँ कि ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यासों को महज व्यंग्य उपन्यास कहकर हमने उन्हें अति सीमित किया है। उनके उपन्यास प्रेमचंद, रेणु, श्रीलाल शुक्ल, मनोहर श्याम जोशी, काशीनाथ सिंह, अमरकांत, कृष्ण बलदेव बैद, मैत्रेयी पुष्पा, अखिलेश आदि के साथ रखकर पढ़े जाते हैं। पढ़े जाने चाहिए। और अगर वे किसी समुदाय द्वारा 'केवल व्यंग्य उपन्यासकार' माने जाते / जा रहे हैं, तो यह व्यापक हिंदी संसार की क्षति है। वे महान् हिंदी कथाकार हैं, जिन्होंने व्यंग्य की शैली में उपन्यास लिखे हैं; व्यंग्य लेख और व्यंग्यकथा लेखन किया है।

श्रीलाल शुक्ल और तमाम लोगों की सराहना अपेक्षा अपनी जगह, मगर लिखना तो ज्ञान चतुर्वेदी को ही था। लिखना तो लेखक को ही होता है। वरना जो लोग याद रखना जानते हैं, वे याद कर सकते हैं जाने कितने ऐसे प्रतिभाशाली रहे जिन्होंने उम्मीद जगाई और फिर कहीं खो गए। कुछेक बार उम्मीदों का वज़न इतना हुआ कि उससे दबकर उदीयमान लेखक असमय अस्त हो गया। ...तो आज जो ज्ञान चतुर्वेदी नामक महान् लेखक हमारे बीच है, वह कैसे विकसित हुआ यह जानने में किसी भी पाठक, आलोचक की दिलचस्पी हो सकती है। होनी चाहिए। अब तो अनेक शिक्षा संस्थानों में तमाम तरह की सफलताओं की स्टडी की जाने लगी है। हम साहित्य के टूल्स से कभी ज्ञान चतुर्वेदी जैसे लेखक की सफलता का विश्लेषण कर सकते हैं।

अभी फिलहाल इतना समझ पा रहा हूँ, यही बता पा रहा हूँ कि हिंदी में जेनुइन लेखक होना बेहद कठिन या भीषण कठिन काम है। और मैं ही क्या, यह बात कालजयी व्यंग्यकार शरद जोशी भी बता चुके हैं।

10 मार्च 1985 के धर्मयुग में व्यंग्यऋषि शरद जोशी ने एक आत्मकथ्य लिखा था--'काहे की आत्मा और काहे का कथ्य '। यह उनके जीवन और उनकी संवेदना का दस्तावेज़ है। इसकी फोटोकॉपी सुश्री नेहा शरद ने उपलब्ध कराई। कृतज्ञ हूँ।

शरद जी कहते हैं--'हिंदी में लेखक होने का अर्थ है,निरंतर उन निगाहों द्वारा घूरे जाना जो आपको अपराधी समझती हैं। ..आप हिंदी में कलम चलाते हैं, तो आपकी भावना प्राय: होती है कि आप जूता मारें खींच कर। निरंतर सहन करने का नाम हिंदी लेखक होना है। कई बार यही सहनशीलता और चुप्पी एक ग्रंथि बन जाती है। उसे तोड़ते रहना पड़ता है, इसके बिना लिखना और जीना दोनों कठिन है। ....इस भाषा में केवल हत्याकांड होते हैं। यहाँ जीवन जीने की साफ़ सुथरी स्थितियाँ नहीं मिलतीं। और मैं चूँकि व्यंग्य लिखता हूँ इसलिए मेरे लिए तो ऐसी स्थिति मिलने का प्रश्न ही नहीं है। लिखना पूर्वजन्म का कोई दंड झेलना है।'

शरद जी ने सही लिखा कि इस भाषा में केवल हत्याकांड होते हैं। किसी भी सार्थक, व्यापक पाठक वर्ग द्वारा सम्मानित और आलोचकों द्वारा प्रशंसित लेखक के पीछे बिलबिलाने वाले लोगों या लेखकनुमा लोगों के जत्थे तैयार होते रहते हैं। समय समय पर। ये बलिदानी जत्थे होते हैं। बरसों तक माँ कुंठा भारती का भंडार भरते हैं। फिर कुछ और बरसों तक जलन, ईर्ष्या, घृणा के खंडहरों में छिप-छिपकर शस्त्राभ्यास करते हैं। फिर मौका देखकर टूट पड़ते हैं। और कुछ दिनों तक इनके शीशविहीन धड़ जगह ब जगह उछलते कूदते दिखाई देते हैं। यह 'कबंध कुल' हिंदी में हमेशा रहा है। रहेगा। ईर्ष्या आदि मानव प्रवृत्तियों का हिस्सा हैं। इसलिए शायद ऐसे कबंध क्षम्य भी हैं। लेकिन एक पक्ष और है। जैसे लाभ

लोभ संचय वासना (यहाँ तक कि हिंसा भी) भी सहज रूप से मनुष्य जीवन का हिस्सा हैं। मगर इस न्याय से मनुष्य को मनमानी करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता। एक अनुशासन हर चीज़ में होता ही है,वरना आदिम समाज क्या बुरा था !

लेकिन आदिम समाज के कुछ सदस्य व्यंग्यकार के चोले में जुमलों के छोले बेचते हुए दिखाई दे जाते हैं। ऐसे लोग पिछले कुछ वर्षों से अधिक मुखर हुए हैं। इस मुखरता के लिए केवल और केवल सोशल मीडिया, ख़ासकर फेसबुक, ज़िम्मेदार है। वरना ऐसे मुखर खर-दूषण अपनी बात कहीं रख ही नहीं पाते थे। फेसबुक की उदारता, सर्वव्याप्ति और अधिकांश सेंसरहीनता का दुरुपयोग हुआ। बजाय संवाद के मुखर खर दूषण निंदायोगी बन गए।

यह सिलसिला एक तथाकथित व्यंग्य उपन्यास के रूप में 'भंडाफोड़ित' हुआ। व्यंग्य में तिकड़ी पर बहुत चर्चा होती रही है। इसको 'व्यंग्य का अलक़ायदा' जैसा कहा गया। पिछले कुछ सालों में ' तिकड़ी तिकड़म' के नाना प्रकार के भाष्य रचे गए। लोग कहते रहे। फेसबुक पर लिखते रहे। लाइक्स लूटते रहे। कमेंट कमल सूँघते रहे। सामने वाले की चुप्पी को समर्पण मानते रहे। जिस पर हमलावर थे, उसके निकटस्थ लोगों पर भी ताने कसते रहे।

ज़ाहिर है। जवाब तो आना ही था। जवाब आया।

जवाब का मंच बना एक साक्षात्कार। ऐतिहासिक साक्षात्कार। 'साक्षी है संवाद' शीर्षक से यह लगभग सवा सौ पृष्ठीय साक्षात्कार किताब के रूप में छप रहा है। ज्ञान चतुर्वेदी से युवा आलोचक राहुल देव ने बेहद महत्त्वपूर्ण बातचीत की है।

ऐसी बातचीत ऐतिहासिक होती है। ज्ञान जी ने इसमें बहुतेरे सवालों के विस्तार से जवाब दिए हैं...इसमें राहुल ने एक सवाल व्यंग्य की तिकड़ी और इस बहाने 'व्यंग्य के त्रिदेव' पर किया है। व्यंग्य के त्रिदेव नामक इस तथाकथित उपन्यास में शामिल तीनों लोगों का नाम नहीं है बस, बाकी जो तनिक भी परिचित है वह जान जाएगा कि ये तीन कौन हैं।

...जब इस तथाकथित उपन्यास के अंश फेसबुक पर लेखक द्वारा लगाए रहे थे, लोग

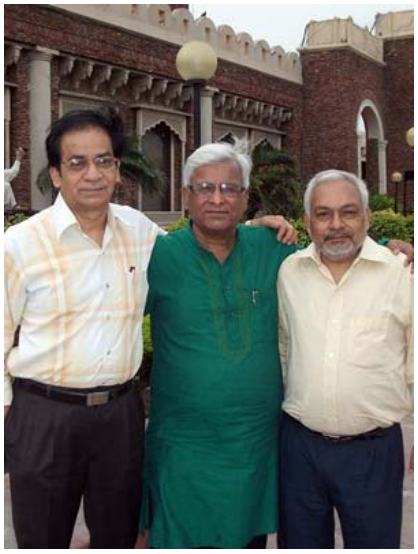

गद्गद् हो रहे थे...उसी दौरान राहुल ने एक साक्षात्कार लेने का मन बनाया था। संयोग से उसमें व्यंग्य की तिकड़ी और फिर व्यंग्य के त्रिदेव का ज़िक्र चल निकला था। ....राहुल की बातों का ज्ञान जी ने तार्किक जवाब दिया था।

इस तथाकथित उपन्यास में हरि जोशी ने हिंदी व्यंग्य के तीन बड़े लेखकों पर अपनी कृपा बरसाई है। कृपा इतनी बरसी है कि पूरा तथाकथित उपन्यास कीचड़ में तब्दील हो गया है।

इसको लेकर पहले से भरे बैठे और समय समय पर खाली होते रहे लोगों ने काफी कुछ कहा लिखा फेसबुक पर। उसपर मेरी कोई टिप्पणी नहीं। ...'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना' और 'लुंडे-लुंडे गतिर्भिन्ना' के अनुसार तथाकथित उपन्यास पर कोई अपनी कुछ भी राय रख सकता है।

मगर, ज्ञान चतुर्वेदी भी तो इन प्रसंगों पर कुछ कह सकते हैं! इतना तो लोकतांत्रिक अधिकार उनका भी है। तो प्रस्तुत है राहुल देव का सवाल और ज्ञान जी का विस्तृत जवाब।

राहुल देव

'अभी हरि जोशी ने 'व्यंग्य के त्रिदेव' नामक एक उपन्यास लिखा है जिसमें तीन देव जो हैं वे आप हैं, प्रेम जनमेजय हैं और हरीश नवल हैं। मैं पूछना चाहता हूँ कि आख़िर आपका नाम लोगों द्वारा कैसे अपने साथ जोड़ लिया जाता है ? ग्रुप बनाकर बगैर उस हाइट का लिखे हुए इन लोगों द्वारा ये नई त्रयी बनाने के पीछे चलता क्या रहता है ? क्या इसके लिए आपकी ओर से कोई छूट मिली हुई है ?'

ज्ञान चतुर्वेदी

' ये बहुत ही कठिन प्रश्न है मेरे लिए। जो मुझे जानते हैं, मैं नहीं जानता कि आप मुझे कितना जानते हैं; जो मुझे जानते हैं वो बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि मैं कभी पड़ा ही नहीं इन चीज़ों में, ज़िंदगी भर और अभी भी नहीं पड़ने की कोशिश करता हूँ। जैसे मैं आपको बताऊँ कि कोई मुझे अपने ग्रुप में बना ले मेम्बर, तो आप देखिए कि मैं सबसे इनएक्टिव आदमी निकलूँगा। जैसे कि वलेस है, व्यंग्यकार ग्रुप है, व्यंग्यधारा ग्रुप है, तो मैं सभी का मेम्बर हूँ, करीब करीब। जिन्होंने बनाया, उन्होंने आपको एक इज़्ज़त से बनाया तो आप बन गए। बाकी आपकी उस एक्टिविटी में कोई लेन-देन नहीं। ये जो व्यंग्य की त्रिमूर्ति पहले परसाई, शरद जोशी और त्यागी जी थे, अब हम हो गए हैं-- ये वाली बात दिल्ली से ही निकली है। मैं नाम न लूँ तो बेहतर है। पर दिल्ली से ही इन लोगों ने अपने आप को इस तरह से कहना शुरू किया। और उसमें चूँकि मुझे नहीं छोड़ा जा सकता था; क्योंकि मेरे बिना वो त्रिमूर्ति या द्विमूर्ति बनती नहीं क्योंकि फ़िलहाल तो एक महत्त्वपूर्ण व्यंग्यकार मैं हूँ ही न ?

तो मेरा नाम साथ में कहना शुरू किया उन्होंने। और मेरी मित्रता प्रेम से तो थी ही, हरीश से भी एक तरह से तो रही ही है। हरीश से भी एक सौहार्द भाव तो रहा है। तो ये डिफरेंट इंटरव्यूज़ में, और इसमें ऐसा कहने की कोशिश और कई सच्चे-झूठे बयान दिए गए। मैं भी झूठ-मूठ में ऐसा लिख दूँ अगर, कि परसाई जी ने एक दिन मुझे बुलाकर कहा कि ज्ञान तुम तो कमाल कर रहे हो, मैं तो तुममें जाने क्या देख रहा हूँ, मैं भविष्य का परसाई देख रहा हूँ तुम्हारे अन्दर, तो ये बहुत बड़ी चालाकी है। परसाई का ही एक बहुत अच्छा व्यंग्य है जिसमें कि वो कहते हैं कि जो मर गया है उस पर संस्मरण लिखना सबसे आसान है। तो जैसे ही कोई कहे कि इधर निकल रहा था कि अचानक सामने से आते तुलसीदास दिखे। तुलसीदास ने कहा कि क्यों भाई ज्ञान चतुर्वेदी, कैसे हो ? अरे भाई मैं तो तुम्हारा बहुत आजकल पढ़ता रहता है, क्या कमाल कर रहे हो तुम भी आजकल। तो इस तरह

से जो निपट गए लोग, जा चुके हैं उनके लिए आपको जो कहना हो कह लो। सब कह चुके। परसाई और शरद जोशी के नाम पर कुछ भी कहते रहते हैं। ऐसे ही यह त्रिमूर्ति, यह इस तरह बनी। इसमें मेरा कहीं कोई रोल नहीं था। हाँ, लगातार मेरा नाम ज़रूर लिया गया। और जो काम किए गए उसमें मुझे ये भी मुझे नहीं पता। मुझे तो बहुत बाद में पता चल रहा है जहाँ यह कहा गया कि ज्ञान चतुर्वेदी भी इसमें सहमत थे या ज्ञान चतुर्वेदी ने ऐसा किया। आपको विश्वास ही नहीं होगा कि इनिशियल दस या पन्द्रह साल तक इस भोपाल में मुझे कोई जानता नहीं था कि ये वो ही ज्ञान चतुर्वेदी है, लिखता है जो। मैं किसी को यह बोलता ही नहीं था। और न किसी समारोह में जाता था। रेयरली कभी गया, किसी को सुनने गया। कोई आया बड़ा राइटर, मुझे लगा इसको सुनना चाहिए, तो मैं चुपचाप जाकर पीछे बैठ जाता था। न श्रोताओं में मुझे कोई जानता था, न मंच से कोई जानता था कि ये ज्ञान चतुर्वेदी हैं। ऐसा करके मैंने शुरू के पन्द्रह साल गुज़ारे हैं यहाँ। धीरे-धीरे यहाँ पर लोग ही मुझे जानने लगे, बुलाने लगे, पहचानने लगे। अभी भी ये हाल है मेरा कि भोपाल शहर के 90 प्रतिशत जो बड़े नाम भी हैं उनसे मेरी मुलाकात ही नहीं है। क्योंकि मेरा ये स्वभाव नहीं है। बनता नहीं मेरे से। बहुत व्यस्त आदमी भी हो गया हूँ। मेरे पास समय ही नहीं बचता। मेरा अस्पताल, फिर मेरा लिखना, फिर मेरा परिवार- इसके अलावा कोई चौथी चीज़ मुझसे नहीं बन पाती। बहुत कम लोग हैं जिनके साथ कभी बैठ लेता हूँ। पर लोगों ने मेरे नाम को इस्तेमाल करना शुरू किया तो मुझे कुछ लोगों ने बताया। मैंने भी कुछ लोगों के इंटरव्यू पढ़े, जहाँ कहीं कहा गया कि व्यंग्य की एक त्रिमूर्ति है जिसमें हरीश हैं, प्रेम हैं और मैं हूँ। इसमें क्या हुआ कि इस त्रिमूर्ति के नाम पे जो भी अच्छे-बुरे काम हो गए, उसमें मेरा नाम भी चूँकि जुड़ा हुआ था, तो वे मेरे भी खाते में गए कि साहब यही सारे पुरस्कार तय करते हैं। सही बात यह है कि ये पुरस्कार वगैरह तय करने वाली हैसियत में तो मैं अब आया हूँ कि मुझे कुछ लोग पूछते हैं, कभी-कभी। कुछ लोग पूछ लेते हैं। किसको अगला देना

चाहिए ? और ऐसा है वैसा है। ये तो अब इस हैसियत में आया हूँ पिछले चार-पाँच साल से। उससे पहले मुझे कभी इन चीज़ों से मतलब ही नहीं रहा यार। अभी भी, साहित्य की राजनीति क्या होती है, इससे कोई मतलब तो मेरा आज भी नहीं है। कैसे अपनी किताब की चर्चा यहाँ-वहाँ कराई जाती है, इससे मेरा आज भी कोई मतलब नहीं है। कैसे अपने आपको चर्चित करा जाता है, कैसे अपने नाम पुरस्कार के लिए बढ़ाए जाते हैं हमको इसकी कोई ख़बर ही नहीं है, हम नहीं जानते। हमको इतने पुरस्कार मिल गए ये हम ईश्वर को ही धन्यवाद कहें। इसमें त्रिमूर्ति का हिस्सा होने के कारण से... या कुछ करने से... ये हमें नहीं पता। न हमने किसी को ग़लत पुरस्कार... हमने एक पुरस्कार ग़लती से दिलवाया था, ग़लत आदमी को... उसको हमने सार्वजानिक रूप से माफ़ी माँग ली। हुआ यूँ कि अंजनी चौहान को जो बहुत अच्छे मेरे मित्र भी हैं और बहुत अच्छे लेखक हैं। मुझे लगता था, जेन्युइनली कि इनको 'अट्टहास' का 'शिखर सम्मान' मिलना चाहिए। उस चक्कर में 'अट्टहास' का 'युवा सम्मान' एक ग़लत आदमी को चला गया। उसकी बाक़ायदा मैंने क्षमा सबसे माँगी क्योंकि मुझसे उन्होंने कहा था कि अंजनी चौहान के लिए प्रस्ताव भरना है। वो कमज़ोर पल रहे होंगें मेरी लाइफ के। अंजनी चौहान के लिए मेरे मन में बहुत इज़्ज़त है। मेरे को बहुत प्रेम भी है और वे अद्भुत व्यंग्यकार हैं ये मैं मानता हूँ। आज के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार आज भी वही हैं, मेरे मन के अन्दर। मुझे लगा हाँ ये बहुत छोटी कीमत है जो मैं चुकाऊँगा अगर मैं अंजनी चौहान को ये दिला सकूँगा तो। ये पुरस्कार बनेगा तो शायद अंजनी चौहान जिन्होंने सालों से लिखना बंद कर दिया, कुछ इस पुरस्कार की लाइमलाइट में आके शायद कुछ लिखना शुरू करें फिर से। ये सारी बातें थीं मेरे मन में, जब मैंने अंजनी के प्रस्ताव के साथ एक कमज़ोर युवा लेखक का प्रस्ताव भी लिख डाला क्योंकि उनकी शर्त सी यही थी। बाकी मैं पुरस्कार की राजनीति में कभी नहीं रहा। पूछ लेते हैं कभी लोग तो मैं बोल देता हूँ। कोई बहुत ही कहे कि नहीं आप ही बताइए तो भी बोल दूँगा। फिर मैं बाक़ायदा निर्मम होकर ही निर्णय करूँगा कि मेरे को ये चाहिए।

अब जवाब का दूसरा हिस्सा।

हरि जोशी जी को मुझसे, बहुत अन्दर से परेशानी रही है। हरि जोशी मेरे अच्छे मित्र रहे हैं और मैंने हमेशा उनकी इज़्ज़त की है कि आदमी के तौर पर वे बहुत अच्छे आदमी हैं। सीधे आदमी रहे हैं। ज़्यादातर सीधा आदमी कई बार बड़ा जटिल हो जाता है। अब ये बड़ी कमज़ोर व्यंग्य रचनाएँ लिखते हैं। सीधा होने के कारण कोई इनसे कह भी नहीं पाता उनके मुँह पर कि आप बहुत ख़राब लिखते हैं।

उन्हें यह भ्रम लगातार हैं कि वे बहुत अच्छा लिख रहे हैं। और आपको ऐसा, जैसा हरि जोशी जी लिखते हैं, ऐसे बहुत से लोग, उनके जैसे सपाट लिखने वाले भी मिल ही जाते हैं। वे चाहें तो साल में तीन सौ व्यंग्य संग्रह भी निकाल सकते हैं। क्योंकि जब मेहनत ही नहीं होनी है कोई, किसी भी विषय पर आपको सीधा सा टिप्पणी टाइप कुछ लिखना है- तो आप रोज़ लिखते हैं। जैसे साल में 365 दिन सम्पादकीय जाता है। ऐसा सम्पादकीय टाइप कुछ भी लिख देते हैं, जिसे वो व्यंग्य समझते हैं। फिर उसका संग्रह निकालते हैं, जिसका भोपाल में बाक़ायदा विमोचन होता था जिसमें वो बताते थे कि अगले साल तीन संग्रह और आने वाले हैं। ... और अगला उपन्यास मेरा तीन सौ पेज का होगा। ऐसी ही बातें।

.. एक बिलकुल ही अलग ढंग से सोचने वाला आदमी। मैंने इस बात को लेके उनको उनके ही किसी प्रोग्राम में बोला भी, स्वयं हरि जोशी जी के प्रोग्राम में ही। तो वो कहीं, मन ही मन, ऊपर से तो कभी नहीं बोले पर मन ही मन मेरे से दुखी हुए मेरी इस बात से।

वो एक तो मेरे से भी बहुत पहले से

लिख रहे थे, व्यंग्य। मेरा कुछ नाम ज़्यादा हुआ तो ये भी उनके मन में आया हो, ये मैं नहीं जानता। मैंने तो उनको हमेशा बहुत इज़्ज़त ही बरती है। पर जब उन्होंने यहाँ के चीफ मिनिस्टर के पास सीधे मेरी शिकायत लगाई सबके साथ मिलके कि साहब इनको ग़लत पुरस्कार दे रहे हो, तब मैंने सोचा कि कभी मेरे मन में बात आए तो मैं भी स्पष्ट ही इनसे कहूँ। तब तक मैंने इनके सीधेपन को बहुत बर्दाश्त किया था कि कौन इनके सीधेपन को हर्ट करे। सीधे आदमी हैं। आप जाते हैं तो चाय-वाय पिलाते हैं। प्यार से मिलते हैं।

सोचिए कि मैं तो इनके बेटे की शादी में खुद से दिल्ली भी गया था शादी अटेंड करने, बाक़ायदा। तो मेरे पारिवारिक संबंध हैं। भाभी बहुत अच्छी हैं। ये स्वयं इस मामले में बड़े जटिल चरित्र हैं कि ये अच्छे भी हैं और जटिल भी हैं। इनके मन में जो आ जाए कर बैठते हैं। ये एक उपन्यास लिखें, जिसे मैं कहूँ कि ये ख़राब है तो कहूँगा ही।

मैं ख़राब को एक हद तक तो बर्दाश्त कर सकता हूँ, उसके आगे मैं उसे अच्छा तो नहीं बोल सकता। तो मैंने कभी इनसे ये बातें भी की हैं कि आपका उपन्यास इस तरह का है। तो अब मेरी इन हरकतों से जो भी इनके मन में बैठा हो। पुरस्कार भी पहले तो शुरूआत में इन्हें बिलकुल नहीं मिलते थे। अब तो ऐसा है कि चलो वरिष्ठता के आधार पर किसी ने ये कहा कि दे ही दो इनको, उस तरह का पुरस्कार मिल गया इनको। तो इन्होंने उस सन्दर्भ में उठाके और उस समय जब अचानक से माहौल ख़राब हुआ व्यंग्य का। जब प्रेम जनमेजय ने मेरे उपन्यास पर गालियों का आरोप लगवाते हुए अपनी पत्रिका में आर्टिकल एक सज्जन से लिखवाया, या उन्होंने लिखा और इन्होंने छापा, जो भी... मैं कह दूँ। ये यह कहते हैं कि उन्होंने लिखा, मैंने बस, छापा पर कई लोग कहते हैं और बड़े विश्वस्त सूत्रों ने बताया कि बाक़ायदा मेरे विरुद्ध कहकर लिखवाया और छापा। तो इससे यहाँ-वहाँ जो विघ्नसंतोषी ग्रुप थे, वो एक्टिव हुए... फिर आपस में लड़ाइयाँ शुरू हुईं... फिर तू तू मैं मैं चालू हुई...

फिर उसमें इनको....हरि जोशी को

मौका मिला कि ऐसा कुछ कर सकते हैं... तो इन्होंने एक ऐसा उपन्यास, उस समय कहा था कि हम लिख रहे हैं।

लिख सकते हैं वे। किसी पर भी लिख सकते हैं। ये घटियापन की इन्तिहा ही कहलाएगी जब कोई आदमी बाक़ायदा यह सब कहके कहे कि मैंने ये इन तीन पर लिखा है। एक तरफ तो आप कहते हैं कि हम व्यंग्य प्रवृत्तियों पर लिखते हैं व्यक्तियों पर नहीं लिखते।

व्यक्ति में भी आपको ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय और हरीश नवल ही मिल रहे हैं। इनसे भी बहुत ख़राब लोग बहुत जगह पर मौजूद हैं। तो एक बौद्धिक दिवालियापन, नैतिक तौर पर भयंकर टुच्चापन और बहुत ही नीच हरकत जब आप करेंगें तब ऐसे ही उपन्यास लिखेंगे, कह-कहके। जब आप कहके ऐसा उपन्यास लिखेंगे तो इसका मतलब ही हुआ कि आप पूरे ही चुक चुके हैं, ख़तम हो चुके हैं।

जैसे एक आदमी डूब रहा हो और आख़िरी डुबकी मारने में पहले हाथ-पाँव फड़फड़ा के बाहर निकाले, ये उस तरह की हरकत है और इसका व्यंग्य लेखन से वास्तव में कुछ भी लेना देना नहीं है। तो यदि वे ऐसा कोई उपन्यास लिखते हैं तो ठीक है। इनका भरोसा है कि बदनाम गर होंगे तो क्या नाम नहीं होगा।

जब आपको कोई गालियाँ देना शुरू करे तो मानिए आप ज़रूर कहीं पहुँच गए हैं। हर ऐरे-गैरे को तो गालियाँ दी नहीं जातीं। जब हम कहीं पहुँच गए होंगे तभी तो आदरणीय हमें गालियाँ दे रहे हैं। तो शायद ये हमारा महत्त्व रेखांकित करने का उनका अनोखा तरीका है।

हरि जोशी जी मानते हैं कि हम लोग महत्त्वपूर्ण हैं तभी तो वे हमें रेखांकित कर रहे हैं अपने उपन्यास में। मैंने एक बार ये भी कहीं बोला था कि एक वे लोग होते हैं जो उम्र के साथ बड़े नहीं होते बस, बूढ़े होते हैं केवल। कुछ लोग केवल बूढ़े होते हैं। कुछ लोग उम्र के साथ बड़े भी होते हैं। हम अपने आपको मानते हैं कि हममें वह बड़प्पन आया है उम्र के साथ।

और ये हरि जोशी जी जैसे लोग केवल बूढ़े हो रहे हैं, ऐसी हरकतें करके वे यही बता रहे हैं। एक बूढ़े के प्रलाप के अलावा कुछ नहीं है इस तरह की हरकतें करना। पर किया है उन्होंने।

जिनको इन्होंने उपन्यास समर्पित किया है उनने मुझसे कहा है कि ज्ञान क्या बताएँ वे एक ऐसा उपन्यास लिख रहे हैं और वो मुझे समर्पित कर रहे हैं। तुम मुझे उसका हिस्सा मत मानना। मैंने कहा कि पता है सर, मैं आपका ऐसा सोच भी नहीं सकता। यह गोपाल चतुर्वेदी जी ने मुझे कहा।

मैंने कहा सर आप हमारे मित्र हैं, आप हमारे पूज्य हैं, आप मुझसे बड़े हैं, मेरे परिवार के हैं। और आपका बड़प्पन मैंने बहुत जगह देखा है। तो मैं ये कैसे मान लूँ कि आप इनकी मूर्खता में शामिल होंगे ? और इतना मूर्ख तो कोई भी नहीं है जो इनकी इस मूर्खता में शामिल हो सकता हो। पर ये हैं तो हैं, क्या कर सकते हैं ?

आप इन पर केवल दया कर सकते हैं। गुस्सा भी तो नहीं हो सकते इन पर। आदमी बिना सोचे उठे और कीचड़ में लोटने लगे तो आप उस पर दया ही कर सकते हैं। गुस्सा कैसे हो सकते हैं ? तो ये उनका कीचड़ में लोटना है।'

***

मैंने अपने फेसबुक पेज पर सवाल का दूसरा हिस्सा पोस्ट किया था। ज़ाहिर है तूफ़ान आया। प्रतिक्रियाओं का ज़लज़ला आया। चाहता हूँ कि कुछ प्रतिक्रियाओं को यहाँ शामिल करूं---

अरविंद तिवारी:

'हरिजोशी जी वरिष्ठ हैं,पर उनका व्यंग्य मेरी नज़र में सपाट बयानी ज़्यादा है। पठनीयता की कमी से रचनाएँ उस तरह

चर्चित नहीं हुईं, जिस शिद्दत से उन्होंने लिखा है। त्रिदेव चूँकि घोषित रूप से खुन्नस ग्रन्थ है,अत: रोचक लगना ही है। '

आलोक पुराणिक:

'इन दिनों व्यंग्य में महानता हासिल करने का एक सूत्र यह भी है कि खुद कुछ करो या न करो यह ज़रूर बताते रहो कि उसने यह ग़लत किया वह ग़लत किया। ज्ञान जी जहाँ हैं वह अपने काम की वजह से हैं। पर हमें समझना चाहिए कि ईर्ष्या भी एक सहज मानवीय प्रवृत्ति है।'

प्रमोद ताँबट:

'एक ऐसे समय में जब राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यंग्य के लिए विषयों की भरमार है, एक व्यंग्यकार दूसरे व्यंग्यकारों की धुर निंदा में मुब्तिला हो, इसे व्यंग्य के मूल विषयों की तरफ से ध्यान भटकाने के प्रयास के रूप में देखना चाहिए। यह बहुत ही अवांछित और खेदजनक हमला है। बहरहाल ज्ञान जी के लंबे इंटरव्यू का इंतज़ार रहेगा।'

निर्मल गुप्त:

'निंदा करते हुए बात को 300 पेज के उपन्यास तक खींच ले जाना बड़ी बात है। सपाटबयानी करते हुए गर्दन फुलाए रखना उससे भी बड़ी बात है। हरी डाल पर बैठकर हरदम ऐंठे रहना तो अद्भुत कला है। सौतिया ढाह टाइप का कोई रस साहित्य में होता है,यह जानना दिलचस्प है।

निजी खुंदक को इस तरह बिखेरना दुर्लभ कला है। जो यह कर पाते हैं वे प्रात: स्मरणीय हैं।

बात सिर्फ इतनी कि सिर धुनने के लिए कोई पाठक इस तरह के भर्त्सना प्रस्ताव पढ़े तो क्यों पढ़े।'

दिनेश रस्तोगी :

'किसी की आँख, किसी हलक में फँस जाएगी। बात निकलेगी तो फिर दूर तलक जाएगी॥'

हरीशकुमार सिंह:

'सूरज में लगे धब्बा
फितरत के करिश्मे हैं
बुत हमको कहे काफिर
अल्लाह की मर्ज़ी है।

व्यंग्य में ज्ञान जी और हरि जी मेरे दोनों आदरणीय रहे हैं। ज्ञान जी ने शालीनता से जवाब दिया है, फटकार भी लगाई है, राहुल

को दिए इस साक्षात्कार में। कुल मिलाकर स्थिति क्रिकेट में सचिन और काँबली जैसी है। दोनों प्रतिभावान थे, एक ही शहर से आदि। व्यंग्य में भी दोनों की यही नियति है। बाकी आप सब समझदार हैं।'

अतुल चतुर्वेदी :

'व्यंग्य के नाम पर आपस का कीचड़ उछालन बन्द होना चाहिए। ज्ञान जी, प्रेम जी और नवल जी अपने काम और बड़प्पन की वजह से जाने जाते हैं। बेहतर है हम उनसे कुछ अच्छाइयाँ सीखें इससे हमारा और व्यंग्य दोनों का भला होगा।'

हरीश नवल:

'ज्ञान जी के कथन से सहमत हूँ ....घोषणा करके उपन्यास लिखा ...सीधे ही कह देते, स्पष्टीकरण ले लेते यदि हमसे कोई शिकायत थी...परिवार पर भी वार करना अखरा...मैं भी उनका सम्मान बड़े होने के नाते करता रहा...मेरे घर भी आते थे ...आज भी मेरी स्टडी में उनकी किताबों का एक खंड बना हुआ है ...लेखन की श्रेष्ठता संख्या नहीं गुणवत्ता से होती है चाहे कम लिखा हो या अधिक ....प्रवृत्तियों पर वार करना होता है ..व्यक्तियों पर प्राय: नहीं ..लेकिन हरि जोशी जी ने उलटी गंगा बहाई...इस उलटेपन से ज्ञान, प्रेम और नवल और अधिक उभर सकते हैं यह उन्होंने सोचा नहीं था.....ईश्वर क़लम के साथ सदबुद्धि भी दे। यह सबको नसीब नहीं ....भगवान भली करें ...ज्ञान भाई की पुस्तक का हार्दिक इंतज़ार है।'

गिरीश पंकज:

'लेखन व्यक्ति नहीं प्रवृत्ति पर ही होना चाहिए। और यह सर्टिफिकेट देना भी बंद हो कि कौन अच्छा या बुरा लिख रहा है। एक लेखक समान विधा वाले की निंदा करता घूमे यह ठीक नहीं। पाठक बताएगा कि किसका लेखन कैसा है। व्यंग्य लेखन में ही मैं यह नादानी देख रहा हूँ कि एक दूसरे पर कीचड़ उछलने का सिलसिला सा चल पड़ा है। इससे नुकसान व्यंग्य का ही हो रहा है।'

प्रेम जनमेजय :

'जिनके अपने गिरेबान नहीं होते वो दूसरों की बू सूँघते हैं।'

आलोक खरे:

'व्यंग्य उपन्यास त्रिदेव की चर्चा काफी दिनों से चल रही है .....शीर्षक से यह भी अच्छे से जाहिर हो रहा था कि किन्हीं तीन श्रेष्ठ व्यंगकारों के बारे में लिखा जा रहा है। ....लेकिन आज ये स्टेटस देखकर मालूम पड़ा की बखिया उधेड़ी गई हैं इस उपन्यास में। अगर किसी खुन्नसवश यह लिखा जा रहा है तो यह वाकई चिंता का विषय है । ..त्रिदेव टाइटल से मुझे यह आभास तो हो ही रहा था की इसमें प्रेम जनमेजय सर तो ज़रूर ही शामिल होंगे ....बाकी ज्ञान सर और हरीश नवल सर जी के बारे में कोई अनुमाना नहीं था। खैर बस यही कहना है कि नाम और बदनाम होने के लिए कुछ कर गुज़रना होता है ...जो कि इन तीनों महान व्यंगकारों ने अपने काम से दिखलाया है भी है। ....चर्चा हुई है अच्छी बात है! इसको धनात्मक रूप में लेना चाहिए!'

कैलाश मंडलेकर :

'मेरे लिए और कदाचित हिंदी के सभी व्यंग्यकारों के लिए ज्ञान चतुर्वेदी एक बड़ी चुनौती इसलिए हैं कि उन्होंने नरक यात्रा , हम न मरब, बारामासी तथा पागलखाना जैसी वृहद औपन्यासिक शृंखला के मार्फ़त हिंदी व्यंग्य के मुहावरे को आमूलचूल बदलने में महती भूमिका अदा की। यह बदलाव ही इतिहास में दर्ज होगा। पुरस्कार और सम्मान समय के साथ विस्मृत हो जाने वाली चीज़ें हैं।'

भुवनेश्वर उपाध्याय:

'शायद ऐसे ही तमाम कारणों से व्यंग्य लेखन को अधिकांश आलोचक दोयम दर्जे का मानते हैं। क्योंकि मानवीय कमजोरियों से ऊपर उठकर कुछ करने का कर्म ही

रचनात्मकता है। और व्यंग्य में निष्पक्ष रहना और निजता से ऊपर उठना बहुत ज़रूरी है। वरना रचना और रचनाकार दोनों ही अपनी विश्वसनीयता और उपयोगिता खो देते हैं। क्योंकि बुद्धिजीवी पाठक किताब स्वस्थ्य मनोरंजन के लिए पढ़ता है या फिर ज्ञान के लिए। ऐसे प्रकरण कहीं न कहीं लेखकीय गरिमा को ठेस पहुँचाते हैं। '

जवाहर चौधरी :

'लेखकों में मतभेद और नाराज़ी वगैरह का मसला नया नहीं है। विचारधारा और सैद्धांतिक रूप से प्राय: देखा जाता रहा है। लेकिन कुछ शिकायतों की प्रकृति ऐसी होती है जैसी पड़ौसियों की। आप कितने ही महान् होंगे आपका पड़ौसी इस बात से नाराज होगा कि आपका पिल्ला उसके आँगन में पोट्टी करके भाग जाता है इस बात को ले कर तू तू मैं मैं भी हो सकती है, और थाने में रपट भी। आसपास के लोगों में दो चार दिन इसकी अच्छी-बुरी चर्चा भी हो जाएगी। लेकिन कितना भी कुछ कर लिया जाए यह प्रकरण रहेगा मोहल्ले में ही, इससे बाहर नहीं जाएगा। हरि जोशी जी का उपन्यास अभी मैंने पढ़ा नहीं है। हो सकता है उसमें वे कुपित हुए हों। उन्हें होना भी चाहिए, वे बड़े हैं। ज्ञान जी ने संयत उत्तर दिया सो अच्छा लगा। ऐसी बातों की उम्र ज़्यादा नहीं होती, उम्मीद है जल्द ही सब भुला दिया जाएगा।'

हरिशंकर राही :

'अंतत: व्यंग्य ही रह जाएगा और जिसमें दम होगा, पाठक मान्यता उसे ही देगा। किसी के प्रायोजन या ईर्ष्या से कोई बडा या छोटा व्यंग्यकार नही होगा। कथा और काव्य जगत की बुराइयाँ व्यंग्य में न आती तो अच्छा था। '

सूर्यबाला :

'सुशील, ज्ञान, प्रेम और हरीश ... शायद मैं ग़लत होऊँ पर मुझे लग रहा है ऐसी चर्चाओं से समूचे व्यंग्य लेखन की प्रतिष्ठा पर आँच आ रही है...मैं अभी तक बड़े फ़ख़्र से, साथी व्यंग्यकारों की प्रतिभा, परिश्रम ही नहीं परस्पर सौहार्द और एकजुटता की भी अक्सर मिसाल दिया करती थी।

सही हों या ग़लत पर कीचड़ से लथपथ सभी होंगे .....शेष साहित्य जगत् मुफ़्त तमाशे का मज़ा लेगा। बस इतना अनुरोध। '

हरीश नवल:

'सूर्यबाला जी ...आपका कथन अभिनंदनीय...निश्चिन्त रहिए ...मन की लुकी छिपी निकल रही है ...शीघ्र ही फिर से वैसा ही हो जाएगा जैसा पहले था ...सर से पानी ऊपर हो चुका था इसलिए कुछ कहा गया ...

आपका आभार ...हम सब के अंतर्मन में वही भावना है जो आपके मन में है ...सहयात्री हैं अपनी अपनी क्षमताओं से लिखते हुए और एक दूसरे का मान रखते हुए ही हम आगे बढ़ते रहेंगे ....कोई हमसे आगे होगा कोई पीछे ...हम अपना अपना निभाते रहेंगे।'

***

मुझे लग रहा है कि एक समूह द्वारा 'त्रिदेव' को उकसा-उकसा कर लिखाया गया। हरि जोशी बहुत सज्जन हैं। उनसे एक बार दूरदर्शन पर, एक बार हिंदी भवन में मिलना हुआ। सीधे सरल हैं। कोई तो है जो उन्हें ग़लत सलाह दे रहा है।

सलाहें देने वाले मानते हैं कि वे मठाधीशी का विरोध कर रहे हैं। लेकिन इसके लिए वे जो कर रहे हैं उसे मैंने एक संवाद में ढाला था--

साथी : भाई, हमें मठाधीशों के ख़िलाफ़ लड़ना है।

भाई : ठीक।

साथी : हमें मठों को तोड़ना है।

भाई : ठीक।

साथी : इसके लिए ताकत चाहिए।

भाई : ठीक।

साथी : और ताकत के लिए हमें सबसे पहले अपना एक अलग मठ बनाना होगा।

भाई : यह सबसे ठीक! बल्कि यही ठीक। मैं तो कहूँगा कि ठीकातिठीक।

भ्रम का तो इलाज किसी के पास नहीं। मेरा अनुभव यह है कि ज्ञान चतुर्वेदी का कोई मठ नहीं है। अलबत्ता, वे व्यंग्य का विश्वविद्यालय हैं। समय-समय पर लगभग हर व्यंग्यकार उनसे मार्गदर्शन पा चुका है। वे हौसलाअफ़ज़ाई करते हैं। स्नेह करते हैं। उनके व्यक्तित्व को जानना इतना आसान नहीं है। एक बार उन्होंने मेरे एक व्यंग्य पर वलेस में यह लिखा था--

'अहा पार्क जीवन भी क्या है-- पाखी वाली सिद्धार्थ की यह रचना बहुत अच्छी है। आख़िरी वाक्य रचना को पूर्णता देता है। रचना कहाँ जाकर बंद हो, यह समझ कम ही लोगों को होती है। वह वाक्य या विचार एक पंच लाइन जैसा न भी हो, पर रचना को वहाँ पहुँचाने वाला होना चाहिए कि पाठक देर तक रचना में डूबा रह जाए। यह रचना का सही अंत तय कर पाना और फिर उसे वैसा ही रच सकना एक बड़ी कला है जो धीरे-धीरे आ ही जानी चाहिए वरना आप अधपकी रचनाएँ देते हुए उम्र गुज़ार देते हैं, पुरस्कार आदि लेते रहते हैं, मठाधीश तक हो जाते हैं। रचना अच्छी शुरू करके, फिर उसे आख़िर तक उसी शिद्दत से निभा पाना बेहद तन्मयता माँगता है। इसके बाद उसे सही क्लोज़िंग दे पाना और भी बड़ी समझ माँगता है। इस समझ को सिद्धार्थ साध ले जाते हैं। सुशील को बधाई।'

ज्ञान जी के इन वाक्यों ने मुझे कितना आत्मविश्वास दिया था, यह मैं बता नहीं सकता।

उनकी लोकप्रियता से तबाह होकर आँय-बाँय-शाँय लिखने लगना कोई उपाय नहीं। ज्ञानजी को बेहतर लिखकर ही पीछे किया जा सकता है। इस बात का इंतज़ार ज्ञानजी को भी होगा।

लेकिन फिलहाल परिदृश्य दूसरा है।

देखिए--

साथी: भाई ,आजकल वह लिख नहीं रहा!

भाई : वह लिखता कब था?

साथी: वह दिख भी नहीं रहा!

भाई: उसे दिखता कब था?

साथी: लेकिन वह कुछ तो कर रहा होगा!

भाई: आजकल वह हत्या और आत्महत्या दोनों का अभ्यास कर रहा है। पता नहीं कब किसकी ज़रूरत पड़ जाए।

और यह दुखद है। काश, सबको सन्मति दे भगवान। ...या, कुछ को दुर्गति दे भगवान।

(अगले अंक में जारी)

❑❑❑

किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24
अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली 110002,
मोबाइल 9868076182

गोदान के पहले

जीवन सिंह ठाकुर

1880 में जन्में प्रेमचंद, 1857 के महान स्वतंत्रता संग्राम के ठीक 23 वर्ष बाद। नि:संदेह तात्कालीन समाज में वे घटनाएँ, वो संघर्ष, वह राष्ट्रीय सम्यक चिंतन का परिवेश उस दौर में पैदा हुए लोगों के आस-पास था। सत्य घटनाएँ, आँखों देखी घटनाओं और हालात का ब्यौरा देने वाले लोग ज़िन्दा थे। ऐसे में एक जागरूक व्यक्ति का विकास 1880 से 1905 तक यानी पूरे पच्चीस वर्ष की उम्र होते-होते वह गहरी समझ और चिंतन शील मानस वाला हो जाता है। 1880 से 1905-6 तक का काल भारत के कई विचारकों, जननेताओं, स्वतंत्रता सेनानियों तथा सांस्कृतिक-धार्मिक चिंतकों के जन्म और विकास का काल भी हैं।

किसी भी विचारक, सृजन शील या रचना धर्मी व्यक्ति को समाज से इतर होकर नहीं देखा जा सकता। प्रेमचंद का पहला उपन्यास 1903 से 1905 तक (असरारे मआ बिद) उर्दू साप्ताहिक पर 'आवाज-ए-ख़ल्क' में धारावाहिक छप रहा था। 1908 में उनकी कहानी छपी। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि 1905 में बंगाल का साम्प्रदायिक विभाजन किया जा रहा था। 1906 में उसी बंगाल में देश विभाजन की रणनीति (कूटनीति) के तहत ढाका में 'मुस्लिम लीग' की स्थापना हुई। साथ ही यह भी देखना होगा कि 1905 में गाँधी जी का हिन्द स्वराज्य, रवीन्द्रनाथ टैगोर का 'गौरा' उपन्यास, इसके पूर्व 1887 में गुजराती में एक बड़ा उपन्यास ''सरस्वती चंद्र'' का पहला खण्ड छपा, जिसके लेखक गोवर्धन राम त्रिपाठी थे। दूसरा तथा तीसरा खण्ड 1892 तथा 1897 में प्रकाशित हुआ था। इस महत्त्वपूर्ण उपन्यास का अंतिम खण्ड 1901 में प्रकाशित हुआ।

यह पूरा परिदृष्य भारतीय चेतना का संकल्प काल भी है। भारत के रचनाकार स्त्री विमर्श, शोषण, ऊँच-नीच, अमीरी-ग़रीबी, के साथ इनकी जड़ों की तलाश में भी थे। देश को एक समूची दृष्टि साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष करने के लिए मिल रही थी। यदि थोड़ा पीछे जाएँ तो तीन बड़े संघर्ष तथा पूरा एक युग सांस्कृतिक चेतना का मिलता है। पूरा 'भक्तिकाल' गहरी स्वातंत्र्य विचारों का था। वह हमें अतीत तथा वर्तमान की पड़ताल करने की गहरी प्रेरणा दे रहा था। वहीं गुरु गोविंद सिंह, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी के संघर्ष भारतीय जनता की मुख्य धारा का जबरदस्त प्राकट्य था। यहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है कि प्रताप से लेकर शिवाजी तक का पूरा संघर्ष सांस्कृतिक चेतना तथा भारतीय सौहार्द की परंपरा की रक्षा का भी है क्योंकि आतताई सत्ता, कट्टर धार्मिकता, बलात् धर्मपरिवर्तन, जजिया कर के ख़िलाफ़ यह भारतीय प्रतिरोध आंदोलन थे। वे रेखांकित कर रहे थे कि 'सत्ता' आक्रामक है वह 'प्रजा' को प्रजा नहीं 'लूट का माल' समझती है। सत्ता का चरित्र राष्ट्रीय था ही नहीं इसलिए तीनों संघर्ष राष्ट्रीय संघर्ष थे। जो भारत की मूल सामाजिक, सांस्कृतिक संरचना, उसके सौहार्दपूर्ण व्यवस्था को बचाने के लिए जूझ रहे थे। अत: भारतीय इतिहास को भारतीय जनता के स्वातंत्र्य संघर्ष, सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की दृष्टि से देखना होगा। आक्रामकों, विध्वंसकारियों की दृष्टि से इतिहास देखने-समझने से या समझाए जाने से हम अपने त्याग, संघर्ष तथा स्वातंत्र्य मूल्यों का आकलन ही नहीं कर पाते है। इससे संशय, भ्रम, झूठ का सच गढ़ लिया जाता है। यह भ्रम पूर्ण सैद्धांतिकी हमारे अंग्रेज़ी परस्त बुद्धिजीवियों के चिंतन की बुनियाद बन गई है जिससे अब मुक्ति लेनी होगी।

प्रेमचन्द का 'गोदान' 1932 में लिखा जाने लगा मई 1936 में छपा। ये चार वर्ष प्रेमचंद के तकलीफ भरे थे। अपार जीजीविषा के धनी प्रेमचंद ने स्वतंत्रता संग्राम को तीव्रतर होते देखा और महसूस किया था। इस दौरान उनके लेख काफी महत्त्वपूर्ण थे।

जो उनके वैचारिक तथा स्वतंत्रता मूल्यों के लिए उनकी प्रतिबद्धता रेखांकित करता है। 1936 में गोदान का प्रकाशन और कांग्रेस में सैद्धांतिक बहस भी तेज़ हुई थी। कांग्रेस में जयप्रकाश नारायण, डॉ. राम मनोहर लोहिया का दबाव वैचारिक रूप से बढ़ गया था। भाषा, अर्थतंत्र, समाज, संस्कृति के संदर्भ में कांग्रेस की समुचित दिशा ये चाहते थे। आचार्य नरेन्द्र देव अग्रणी भूमिका निभा रहे थे।

इसी दौरान प्रेमचंद का 'महाजनी सभ्यता' वाला लेख साहित्य जगत् में चर्चा का विषय बन गया था। इसमें प्रेमचंद ने बड़े बुनियादी सवाल उठाए थे। 'महाजनी सभ्यता' पर उनका हमला उनके पूरे वैचारिक प्रवाह तथा स्वतंत्रता संग्राम से भी सम्बंध रखता है।

'महाजनी सभ्यता' का प्रत्यक्षत: फल तो स्पष्ट नज़र आता ही था। लेकिन इस शोषक व्यवस्था की बुनियाद, सुदूर इतिहास में थी। प्रेमचंद ने इसका स्पष्ट संकेत हर जगह दिया है। क्योंकि वे धर्म, इतिहास, संस्कृति के विचारक भी थे। जो 'महाजन' सामने दिख रहा था उसके पीछे सदियों का इतिहास साँसें ले रहा था। हम याद करें प्रेमचंद ने 1910 में अपने लघु उपन्यास 'दुर्गादास' का ऐतिहासिक चरित्र लिया है। वह समय, तथा क्रूर सत्ता का चित्रण प्रेमचंद ने किया है।

भारत का टूटता, विध्वंस होता अर्थतंत्र, मानव विनाश, उजड़ता समाज, लूटतंत्र का विकास इसकी मूल जड़ में था। ग्यारहवीं सदी में हमले, लूट, कत्ले आम, बलात क़र्ज़, जजिया करों ने समग्र समाज को विपन्न बना डाला था। 1747 के अब्दाली के भीषण हमले,

लूट, कत्लेआम ने भारतीय बाज़ार, उत्पादन, रोज़गार के संतुलन का विनाश कर दिया था। मुगल हुकूमत भारत की रक्षा करने में सर्वथा अक्षम ही नहीं वरन अपराध के स्तर पर अब्दाली को छूट दे कर बैठ गई। 1757 में अंग्रेजों की पैठ को 'दीवानी' के अधिकार देकर मुगलों ने अपने दायित्व से मुक्ति पाली और देश आए हमलावर अंग्रेज़ों के हवाले कर दिया।

हमें याद रखना चाहिए कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने 'अर्थतंत्र' को तोड़ने, उत्पादन के तंत्र को, संपूर्ण रोज़गार को नष्ट करके 'टैक्स' और 'लूट' को लाभ का सौदा बनाया। 1757 से 1857 के बीच भारत की भयावह लूट की गई। कम्पनी को मिले दीवानी के अधिकार अंततः कृषकों, हुनरमंदों, उत्पादक इकाइयों को खत्म करने का 'लाइसेंस' था।

कर उगाही के लिए नए-नए जागीरदारों, नए 'महाजनों' को खुली छूट मिली। यह 'महाजन' वर्ग जागीरदारों तथा उनके आकाओं के लिए 'माफिया डॉन' के क्रूर अग्रिम हिन्सक गुण्डों की तरह काम करने लगा था। इस नई लूट की व्यवस्था (कु व्यवस्था) ने कृषि, जूट, धातु उद्योग को तबाह कर दिया कपास, बुनकर, रंगरेज़, वस्त्र उद्योग, चौपट होते चले गए। हमारे महान बुद्धिजीवियों ने प्रेमचंद के 'महाजनी सभ्यता' वाले लेख की उसी बुनियादी दृष्टि तथा विचार को देखना पसंद नहीं किया जो मुगलों, अब्दालियों और अंग्रेज़ों के द्वारा भारत के समाज तथा अर्थतंत्र के विनाश से पैदा हुई थी।

प्रेमचंद गाँव में बैठे 'महाजन' भर की बात नहीं कर रहे थे। वे ब्रिटिश हुकूमत के द्वारा ठेके पर दिए गए क्षेत्र में नए जल्लादों-लुटेरों द्वारा किए जा रहे विनाश को भी रेखांकित कर रहे थे। इस नए 'निज़ाम' जिसकी जवाबदार मुगल सत्ता थी। इस शोषक व्यवस्था को ख़त्म करके 'होरी' की सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता की बात कर रहे थे। प्रेमचंद जिस युग में पैदा हुए थे। वह युग भयावह अकालों का भी था। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की भारतीय 'एक जुटता' स्वतंत्रता की प्रबल होती भावना एवं विचार से शोषक सत्ता बुरी तरह सहम गई थी। 1857 से 1859 के इन दो वर्षों में

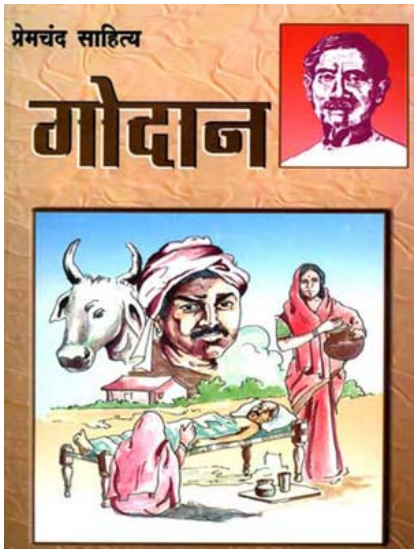

ब्रिटिश अत्याचारों से लाखों भारतीयों की आपनी ज़िंदगी कुर्बान हुई। दहशत, उजाड़, से गाँव के गाँव खाली हो गए। सत्ता का ज़ुल्म यहीं ख़त्म नहीं हुआ। 1857 से 1900 के बीच बाईस बड़े विनाशकारी अकाल पड़े इसमें करोड़ से ज़्यादा भारतीय मारे गए। स्वयं ब्रिटिश संसद में अंग्रेज़ सांसदों ने स्पष्ट कहा कि ''ये बाईस बड़े और विनाशकारी अकाल भारत में ब्रिटिश हुकूमत ने पैदा किए हैं। जिसमें बड़े पैमाने पर मानव विनाश हुआ है।'' इस महाविनाश के बाद भी ब्रिटिश सत्ता भारतीयों के प्रति राहत तो दूर उल्टे टेक्स बढ़ा कर लूट की इंतिहा करने में जुट गई थी। 1900 तक ब्रिटिश जनित वे 'ज़मींदार' नए टेक्स अधिकारियों की टोलियाँ, कृषि, किसान, खेतीहर मजूर, पर क्रूरता से टूट पड़ी थी। ऐसे में 'प्रेमचंद' 1936 में 'जिस महाजनी सभ्यता' के द्वारा शोषण का मुद्दा उठा रहे थे। वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद प्रसूत 'महाजनी' का मुद्दा था। वे समग्र शोषक निजाम के ख़िलाफ़ बोल रहे थे। जबकि ब्रिटिश वादी बुद्धिजीवी महज 'महाजन' शब्द पर पिल पड़ा और उसने मुगलों, अब्दालियों और ब्रिटिश शोषकों के 'अपराधों, लूट, विनाश' को बरी कर दिया। प्रेमचंद का सोच उनके लेखन में स्पष्ट है वे सुदूर अतीत, मध्यकाल और वर्तमान में बराबर अपनी दृष्टि रख रहे थे।

प्रेमचंद 1917 की सोवियत रूस की क्रांति से प्रभावित थे। लेकिन उनका स्पष्ट मत था कि क्रांति या सुधार आयात नहीं होते क्रांति या परिवर्तन हमारी सामाजिकता, हमारी सांस्कृतिक परिवेश के वैचारिक औज़ारों से ही आएँगे। 1928 में प्रेमचंद अपनी पत्नी शिवारानी देवी (प्रेमचंद घर में) से कहते हैं ''शिवारानी ने कहा तो क्या रूस वाले यहाँ भी आएँगे? वह बोले : रूस वाले यहाँ नहीं आएँगे। मैं बोली वह लोग अगर यहाँ आते, तो हमारा काम जल्दी हो जाता। वह बोले वे लोग यहाँ नहीं आएँगे हमीं लोगों में वह शक्ति आएगी। वह हमारे सुख का दिन होगा, जब यहाँ काश्तकारों, मज़दूरों का राज्य होगा।'' स्पष्ट है प्रेमचंद अपने देश - अपने समाज की ऊर्जा अपनी शक्ति और परिवर्तन के विचारों से देश में 'जनता का राज्य' चाहते थे। उनका काश्तकार, मज़दूर, कारीगर, सिपाही, खेत मज़दूर की विपन्नता और बर्बादी में पिछली सदियों का उत्पीड़न, लूट थी। पूरा देश दमित बना दिया गया था। प्रेमचंद समग्रता में देश में बदलाव तथा अर्थतंत्र की समानता चाहते थे।

स्वतंत्रता के दौरान 16 अक्टूबर 1933 के जागरण पत्र में प्रेमचंद ने 'पंडित जवाहरलाल नेहरू की आर्थिक नीति' शीर्षक से अपने लेख में लिखा था ''आपकी (जवाहर लाल नेहरू की) नीति वही है जिससे भारत के ग़रीब से ग़रीब आदमी को भी दैहिक और मानसिक भोजन और समान अवसर मिले। आप पूँजीपतियों के फायदे के लिए वे चाहे देश के हों, चाहे विदेश के, ग़रीबों और मजूरों का पीसा जाना नहीं देख सकते और यही आपकी नीति है। इसके सिवा अगर कोई अर्थनीति है तो वह धनवानों की, स्वामियों की, मोटी तोंद वालों की नीति है। जो नीति धन वालों को ग़रीबों के खून पर मोटा कर सकती है, उसका जितनी जल्दी अन्त हो जाए, उतना ही अच्छा। अमीर, ग़रीबों को चूस कर ही अमीर बनता है। समाज की व्यवस्था ही ऐसी रखी गई है कि हरेक व्यक्ति संसार को अपने स्वार्थ का क्षेत्र समझता है। वह लोग जो जवाहर लाल जी की इस नीति से चौंक उठे है। नित्य ग़रीबों को कुचले जाते देखते हैं, पर उन्हें कभी यह बात नहीं खटकती। कांग्रेस पूँजीपतियों की इस नीति का समर्थन करके राष्ट्रीय संस्था नहीं बन सकती।'' (1)

उक्त कथन प्रेमचंद द्वारा दिए गए 'महाजनी सभ्यता' (1936) वाले वक्तव्य की पूर्व पीठिका थी। इसमें वे

साम्राज्यवादियों के खड़े किए गए शोषणवादी व्यवस्था को स्पष्ट इंगित करते है जो 1747-1757 से 1857 से 1936 तक फैला हुआ था। प्रेमचंद का इतिहास बोध तथा सामाजिक मूल्यों की परख का बोध बहुत सशक्त रहा है। इस निज़ाम को जिसे प्रेमचंद रेखांकित कर रहे थे उसे समझा जाना ज़रूरी है। क्योंकि ख़ास बुद्धिजीवी गण प्रेमचंद के कथन को बेहद 'संकुचित' करके 'संघर्ष' की बजाय 'झगड़े' के रूप में पेश करते है।

30 अप्रैल 1934 के 'जागरण' में ''कांग्रेस की आर्थिक योजना'' पर अपने लेख में लिखा था ''कांग्रेस ने अभी तक कोई योजना (आर्थिक) नहीं बनाई है। और जब तक वह खुले तौर पर अपनी योजना पेश न कर दे, जनता को उसके विषय में भ्रम हो सकता है, संभव है, कांग्रेस के अपनी नीति निश्चय करते ही बहुत से ऐसे सज्जन उससे संबंध तोड़ ले, जो अभी तक उसके सत्याग्रह और असहयोग के कारण उस में शरीक है। कांग्रेस में अभी सभी विचारों के लोग मिले हुए है, जिनमें स्वराज्य की इच्छा के सिवा सामाजिक, आर्थिक आदि सिद्धांतों में भेद हैं। कांग्रेस में बड़े-बड़े ताल्लुकेदार और ज़मींदार, बड़े-बड़े पूँजीपति और व्यापारी शरीक है। सभी स्वराज्य को अपने-अपने स्वार्थों की आँख से देख रहे है।'' (2)

1933-34 में प्रेमचंद के चिंतक मन ने साहित्यकार कर्म ने भारतीय राजनीति की दिशा तथा दशा को बहुत ही बरीकी से समझ लिया था। स्वत्रंत्रता के बाद देश विभाजन, सत्ता में शोषकों की भागीदारी, परिवारवाद, घोटालों, विदेश नीति की असफलता। 1962 के चीन के भीषण हमले। आदि-आदि से प्रेमचंद की चिंता को सिद्ध कर दिया था।

प्रेमचंद ने जो लिखा, जो कहा उसे जीवन में भी उतारा था। विधवा विवाह, बाल विधवा, नारी उद्धार पर सशक्त तरीके से लिखा तो स्वयं ने भी विधवा-शिवारानी जी से विवाह किया। असहयोग आंदोलन में नौकरी छोड़ दी। हमें उनके कर्मशील जीवन को समझना होगा। महज 'आदर्शवादी' कह कर उनके महत्त्व को कतई कम नहीं किया जा सकता। एक उदाहरण काफी होगा।

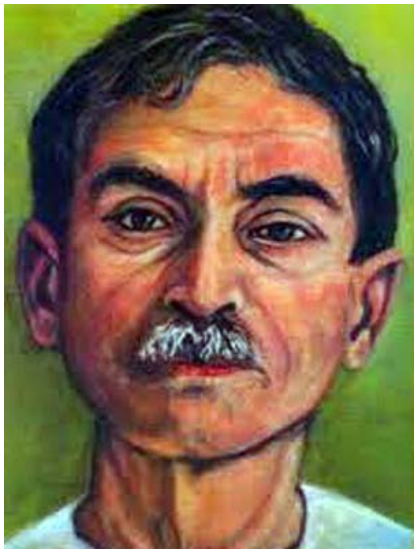

प्रेमचंद ने नौकरी छोड़ ''नौकरी छोड़ने के तीन वर्ष बाद 1924 में अलवर के राजा ने उन्हें अपने पास आकर रहने का संदेश भिजवाया। 400/- रुपया मासिक, बंगला, मोटर देने का आश्वासन दिया। बहुत कठिन आर्थिक स्थिति होते हुए भी प्रेमचंद ने ऐस अवसर तथा प्रलोभन से इन्कार कर दिया।'' (3)

प्रेमचंद के समक्ष अपने जीवन की सुख-सुविधा की बजाए श्रेष्ठ लेखन और देश-समाज की स्वतंत्रता तथा उसका आर्थिक-सामाजिक विकास प्रमुख था।

प्रेमचंद ने स्पष्ट कहा था कि ''जिन्हें धन-वैभव प्यारा है, साहित्य मंदिर में उनके लिए स्थान नहीं हैं। यहाँ तो उन उपासकों की ज़रूरत है जिन्होंने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान लिया हो, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मुहब्बत का जोश हो।'' (4)

प्रेमचंद आगे कहते हैं ''हम तो समाज का झण्डा लेकर चलने वाले सिपाही हैं।''(5)

प्रेमचंद भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम के हम कदम रहे। 12 मार्च 1930 को दाण्डी मार्च शुरू हुआ। इसके ठीक पंद्रह दिन पूर्व 'हंस' का प्रकाशन हुआ। मार्च (दण्डी) और 'साहित्य का मार्च' दोनों साथ-साथ थे।

प्रेमचंद ने अपने संकल्पवान वक्तव्य में कहा ''मैं फागुन याने नए साल से एक हिन्दी रिसाला 'हंस' निकालने जा रहा हूँ 64 सुफहात का होगा। और ज़्यादातर अफसानों से ताल्लुक रखेगा। है तो हिमाकत ही दर्दे सर बहुत और नफा कुछ नहीं। लेकिन हिमाकत करने को जी चाहता है। जिंदगी हिमाकतों से गुज़र गई, एक और सही।'' (6) इसी 1930 के वर्ष में प्रेमचंद का कहानी संग्रह 'समर यात्रा' प्रकाशित हुआ।

जिस 'महाजनी' व्यवस्था की चर्चा होती है। उसमें पिछली आठ सदियों से लूट-खपोट से ग्रस्त भारत की दुरावस्था और आर्थिक महाविनाश हैं। उससे उपजी भयावह ग़रीबी और साम्राज्यवाद से प्रसूत शोषक व्यवस्था को प्रेमचंद स्पष्ट करते हैं। वे समग्र भारत को पूर्ण समग्रता में देखते है। हर दबे कुचले, शोषित, पीड़ित के लिए प्रतिबद्ध सिपाही हैं तो समग्र भारत को दयनीयता से निजात दिलाने की सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि भी वे देते हैं। नि:संदेह 1857 के पूर्व की सदियों को खगालना-समझना नितांत आवश्यक है।

'गोदान' के पूर्व के समस्त दौर को समझना और पिछली तीन सदियाँ तो हमें देखनी ही पड़ेगी।

***

(1) गोर्की और प्रेमचंद दो अमर प्रतिभाएँ - ले. डॉ. मदनलाल मधु, पृष्ठ 38

(2) गोर्की और प्रेमचंद दो अमर प्रतिभाएँ - ले. डॉ. मदनलाल मधु, पृष्ठ 39

(3) गोर्की और प्रेमचंद - पृष्ठ 87

(4) प्रेमचंद, भारतीय साहित्य के निर्माता ले. प्रकाशचन्द्र गुप्ता।

(5) साहित्य अकादमी, दिल्ली का प्रकाशन 1969 पृष्ठ 49 पेरा

(6) प्रेमचंद, भा.सा. के निर्माता प्रकाश चन्द्र गुप्ता - पृष्ठ 44 पेरा

(7) जवाहर सिंह जाट - डॉ. मनोहर सिंह राणावत

(8) सल्तनतकाल में हिन्दू प्रतिरोध - डॉ. अशोक कुमार सिंह

(9) 'भारतीय चिंतन परंपरा' - के. दामोदरन,

(10) इतिहास के हम सफर - जीवन सिंह ठाकुर

❑❑❑

422, अलकापुरी, देवास (म.प्र.)
455001
फोन : 07272-227171
मोबाइल 9424029724

संस्मरण

अविस्मरणीय कुँवर जी

सरिता प्रशान्त पाण्डेय

कुँवर नारायण से मेरा प्रथम परिचय तब हुआ जब मैंने एम.फिल में प्रवेश लिया। इसके पहले मैंने उनकी एक दो छुट-पुट कविताएँ पढ़ी अवश्य थीं, लेकिन पूर्णत: परिचित नहीं थी। एम.फिल की कक्षाएँ समाप्ति के बाद लघु शोधप्रबंध लेखन का विषय चयन करना था और मैं अत्यधिक संशय में थी कि किस विधा में करूँ। हालाँकि मेरी रुचि कविता में थी लेकिन फिर भी मैं कोई निर्णायक चुनाव नहीं कर पा रही थी। एम.फिल के दौरान डॉ. रतन कुमार पाण्डेय मेरे शोध निर्देशक थे। उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि महिला कथाकारों पर कुछ पढ़िए और उन पर अपना लघु शोध-प्रबंध प्रस्तुत कीजिए। कुछ कहानी संग्रह और उपन्यासों को गहराई से अध्ययन करने के बाद भी मुझे आत्मसंतुष्टि न मिल सकी और फिर मेरा मन अन्यत्र विषय के लिए छटपटाने लगा। मित्रों के साथ चर्चा करने के बाद मुझे यह ज्ञात हुआ कि मुझे परिदृश्य प्रकाशन, (जो कि हिंदी किताबों की दुकान है) जाकर पुस्तकों को देखना चाहिए। वहाँ जाकर मैंने अनेक पुस्तकों को देखा और एक दो पुस्तकों का पाठन भी किया सरसरी निगाह से। उस गहरी तलाश में अचानक मेरी नज़र 'वाजश्रवा के बहाने' पर पड़ी। उसे भी मैंने एक आम पुस्तक की तरह निकालकर बस देखना ही चाहा था, परन्तु पहले ही पृष्ठ की भूमिका पढ़कर मैं इस पुस्तक की तरफ़ आकर्षित हो गयी। इसमें संकलित कुछ कविताओं को जब मैंने पढ़ा, तब न जाने कब यह पुस्तक मेरे लिए आम से ख़ास बन गई, मुझे पता ही न चला। घर आने के बाद मैंने इसका गहराई से अध्ययन किया। इसमें ही पढ़कर कुँवर जी के अन्य काव्य-संग्रहों को भी ख़रीदा। प्रारम्भ में मैं कविता को पढ़कर सरलता पूर्वक कुछ समझ नहीं पाई, लेकिन उनकी ही कविताओं द्वारा मुझे प्रेरणा से परिपूर्ण आत्मबल मिला। कुँवर जी की ही एक कविता जब मैंने पढ़ी कि -

''ये पंक्तियाँ मेरे निकट
आई नहीं
मैं ही गया उनको मनाने
पास लाने''।

इन पंक्तियों ने मेरे हतोत्साहित मन को उत्साह की तरफ मोड़ दिया। मझे सम्बल मिल गया और उस समय लगभग पूरी रचनाएँ तो नहीं कह सकती, पर उनके पाँच काव्य संग्रह मैंने तीसरे दिन ले लिए और 'वाजश्रवा के बहाने' पर अपना लघुशोध प्रबंध पूर्ण करने का निश्चय किया। उसके बाद मैंने उनकी बहुत सारी रचनाएँ पढ़ीं। उनके बारे में पढ़कर ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी सरलता की प्रतिमूर्ति के दर्शनों का लाभ उठा रही हूँ। एम.फिल के दौरान जब डॉ. करुणा शंकर उपाध्याय हमारे कक्षा में आये तो उन्होंने सारे विद्यार्थियों से लघु शोध का विषय जानना चाहा। सबने अपने-अपने चुनिन्दा विषयों को उनके समक्ष प्रस्तुत किया। मैंने भी अपना विषय उन्हें बताया। मेरे विषय को सुनकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए। मेरे उपयुक्त और स्वेच्छा से विषय चुनाव को लेकर उन्होंने मेरी हौसला अफ़जायी भी की। जितना कुँवर जी के बारे में मैं उस वक़्त नहीं जान पाई, उतना सर ने मुझे कुँवर जी के बारे में, उनके कृतित्व के बारे में, उनके सम्मान के बारे में तथा उनके लेख के बारे में साक्षात् रूबरू करवा दिया। उस समय मैं अपने निर्णय के प्रति अत्यंत संतुष्ट हो गई और मुझे यह एहसास हुआ कि मैंने सही चयन किया है। अंतत: मेरा लघु शोध प्रबंध पूर्ण होकर जमा हो गया। उसके बाद भी कुँवर जी के प्रति तथा उनकी कविताओं के प्रति मेरा मोहभंग नहीं हुआ। जितना उनकी कविताओं को पढ़ती, उतनी ज़्यादा उनमें मेरी रुचि गहरी होती जाती। अब बारी थी पीएॅच. डी. में प्रवेश लेने की। फिर से वही संशय कि पीएॅच.डी. करूँ किस विषय पर। फिर से मन उसी झंझावत में आकर फँस गया क्योंकि उस समय मुझे यह ज्ञात नहीं था कि एम.फिल और पीएॅच. डी. दोनों के लिए शोध एक ही रचनाकार पर कर सकते हैं। कभी मन कहता पत्रकरिता पर कर लूँ, कभी मन कहता सिनेमा पर, मन का क्या करती। वह तो चंचल था भागता ही रहा-कभी इस विषय पर, तो कभी उस विषय पर लेकिन मन के किसी कोने में बसी थी कुँवर जी की कविता, जो सारे विषयों पर हावी हो गई और मेरा चंचल मन स्थिर होकर काबू में आ गया। फिर मैं रम गयी कुँवर जी की कविताओं में। डॉ. बिनीता

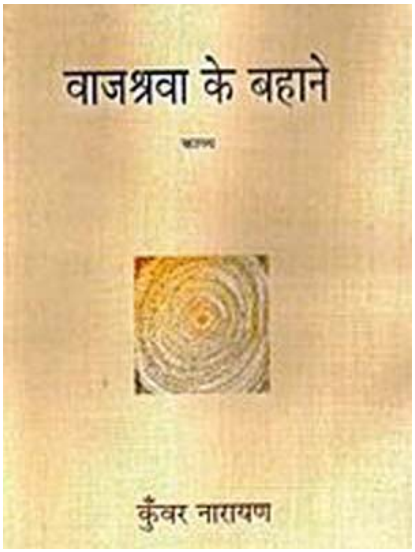

सहाय के निर्देशन में मुझे पीएॅच.डी. करने की अनुमति प्रदान की गयी, जिन्होंने मुझे उनकी कविताओं के अनेक विषयों से जोड़ने का सफल कार्य किया तथा कुँवर जी की कविता के नये आयामों से साक्षात्कार करवाया। इस विषय के प्रति उनकी सहज स्वीकृति थी। मैं कुँवर जी से मिलना चाहती थी। उनकी रचनाओं को पढ़कर मेरे अंर्तमन में जाने कब उनसे साक्षात्कार करने की ललक जाग उठी, मुझे इसका आभास भी न हुआ। मेरी इस चाह को मैम ने सम्बल प्रदान किया। उन्होंने यह स्वयं कहा कि जाना ही चाहिए क्योंकि रचनाकार से मिलना, उनके बारे में स्वयं जानना, उनको देखना, उनके साथ बिताए पल की अनुभूति करना एक व्यापक सफलता का परिचायक है। कुँवर जी से मिलने की उत्सुकता को लेकर मैंने बहुत सारी योजनाएँ बनाई। दिसम्बर के अंत में 21 तारीख को मेरा जाना तय हुआ क्योंकि उसी समय क्रिसमस की छुट्टियाँ होती हैं। मैंने कुँवर जी को फ़ोन पर सूचित किया कि मैं उनसे मिलने आ रही हूँ। बहुत आनंदित होकर प्रसन्न मुद्रा में उन्होंने कहा था,

'आओ सरिता तुम्हारा स्वागत है। तुम्हें कहीं और जाकर रुकने की आवश्यकता नहीं है, तुम्हें सीधा मेरे घर पर ही आना है'। उनका यह आत्मीयता से परिपूर्ण वाक्य आज भी गुंजित होता रहता है। चाहकर भी नही भुला सकती उन स्नेहिल शब्दों को। ट्रेन में बैठने के बाद मैंने प्रश्नावली को लिपिबद्ध किया। उनसे क्या-क्या पूछना है ? क्या बात करनी है ? क्या-क्या जानना है उनके बारे में, उनकी कविताओं के बारे में, इसका सारा ब्यौरा मैंने उस प्रश्नावली के तहत बनाया। मेरे उन दो दिनों के सफ़र में कम-से-कम पाँच बार कुँवर जी का फ़ोन आया। उनका यह अपनापन देखकर उनके प्रति मेरी श्रद्धा अत्यंत प्रगाढ़ हो गई। दिल्ली जाने के बाद मैं तत्काल उनके घर नहीं गयी। क्योंकि रात का समय और उनसे मैं पहली बार मिल रही थी, इसलिए उन्हें कोई तकलीफ़ नहीं देना चाहती थी। शायद यह मेरी संकोची प्रवृत्ति थी, जो मुझे तत्काल वहाँ जाने से रोक रही थी। दूसरे दिन सुबह उनके बताए पते पर निकल पड़ी, क्योंकि उस वक़्त उनका घर ही मेरा गन्तव्य था। मन में जैसे घबराहटों का तूफ़ान उमड़ पड़ा हो, रिक्शे में बैठकर सोचती जा रही थी-क्या कहूँगी, कैसे मिलूँगी इतने बड़े रचनाकार से, कुछ पूछते समय कहीं मेरी जुबान न लड़खड़ा जाये और मैं उनसे कुछ पूछ ही न पाऊँ। इसी उधेड़बुन में मैं उनके घर पहुँच गयी। घर में प्रवेश करते ही एकदम शांत वातावरण में जिनसे मेरा सामना हुआ, वे थीं कुँवर जी की पत्नी भारती नारायण जी और वहीं समीप ही हाल में बैठे हुए थे कुँवर नारायण जी। भारती जी से परिचय होने के पश्चात् उन्होंने हमारा परिचय लिया। फिर कुँवर जी से मिलवाया। परिचय की औपचारिकता के बाद कुँवर जी ने मेरे शोध विषय के बारे में पूछा। एम.फिल के लघुशोध प्रबंध को देखा। उनकी श्रवण क्षमता बहुत कम हो गयी थी, बहुत ऊँचा बोलना पड़ता था, पर्याप्त रूप से देख भी नही सकते थे। ऐसे में अर्धांगिनी का धर्म निभाती भारती जी उनकी सबसे बड़ी सहायक थीं और उस समय मेरी भी इसलिए कि जो बात कुँवर जी बताने में असमर्थ हो जाते, वे उसका स्पष्ट और सटीक जवाब दे देती थीं। मेरे पूछने पर कुँवर जी ने अपने बारे में, अपनी कृतियों के बारे में विस्तारपूर्वक बताया। जो प्रश्न मैंने उनसे किये उनके संतोषजनक उत्तर भी प्राप्त किया। सबसे ज़्यादा हैरान तो मैं तब हुई जब उन्होंने कहा कि एक प्रबंध काव्य लिखना शुरू किया है, छः सात महीने में छपकर आ जायेगा। मैं आश्चर्य-चकित रह गई कि ऐसी स्थिति में इतनी व्यापक रचना-शीलता, जबकि शरीर के कुछ अवयव पूर्णरूप से

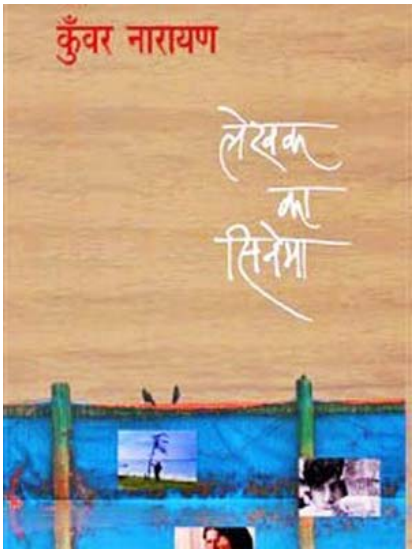

साथ नहीं दे रहे हैं। कर्तव्यबोध को पूरा करने की इतनी अदम्य लालसा। आवाक् रह गयी मैं। उससे भी ज़्यादा स्तब्ध तब हुई जब उन्होंने कहा ''फिल्मों पर कुछ लिखने के लिए सोच रहा हूँ जब यह संग्रह लिख कर समाप्त हो जायेगा तब उसकी शुरुआत करूँगा और अब 2017 में उनकी मृत्यु के पहले वह उनकी सोच, रचना के रूप में तब्दील हो गयी। और आज हमारे समक्ष वही सोच वही चिन्तन ''लेखक का सिनेमा'' का रूप लेकर अवतरित हो गई। इतनी रचनात्मकता, इतनी क्रियाशीलता शायद बिरले लोगों में ही हुआ करती है। जॉन मिल्टन की तरह कुँवर जी ने भी अपनी शारीरिक कमज़ोरी को अपने कर्मक्षेत्र के आड़े नहीं आने दिया। बात-चीत के दौरान मैंने कुँवर जी से पूछा ''आपकी कविता दुःख-सुख, जीवन-मृत्यु के संगम से लबालब है, क्या आपका जीवन अत्यंत दुखों से गुज़रा है?'' उनके उस लाजवाब जवाब को सुनकर मैं आवाक् रह गयी। उन्होंने कहा -जीवन में दुःख, तकलीफों का आना बेहद लाज़मी है, क्योंकि ''जिसने कभी दुःख न सहा, वो सबसे बड़ा दुःखी है जिसने कभी पीर न सही, वो बहुत बड़ा बेपीर, बिना दुःख दर्द को सहे हमें दूसरे की तकलीफ़ों का एहसास नहीं होगा''। उनका यह विचार जैसे डूबते को तिनके का सहारा हो। उम्मीदों से भरे इस विचार को सुनकर मेरा रोम-रोम प्रफुल्लित हो गया। उस समय उनकी स्थिति बहुत सारी बातें करने की नहीं थी, लेकिन इसके बावजूद उन्होंने जो कुछ कहा अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण और

सारगर्भित था। अपने लेखन के बारे में उनकी राय थी कि लिखना मेरे जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा है जिस समय लेखन कार्य नही कर पाता उस वक्त बहुत बेचैनी महसूस करता हूँ। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कहीं कुछ खो गया हो। कुँवर जी के व्यक्तित्व में एक सहज संवेदना और गहरी आत्मीयता थी जो मुझे अपनेपन का एहसास करवा गई। वहाँ जाकर मुझे यह एहसास ही नहीं हुआ कि मैं ऐसे लोगों के बीच आई हूँ जिनसे मेरा कोई नाता नहीं बल्कि मैं तो ऐसे लोगों के साथ हूँ, जिनसे मैं चिर-परिचित हूँ। बात करते-करते अचानक मौन हो जाते वे, ऐसा लगता जैसे किसी चिन्तन में डूबे हुए हों। आते समय उन्होंने कहा ''आज नहीं जाना है तुम्हें, यहीं रुको, यहाँ से चली जाना, तुम्हे क्या ज़रूरत कहीं और जाकर ठहरने की, भारती इनके रहने की व्यवस्था करो।'' इतने बड़े रचनाकार से अपने लिए इतनी आत्मीयता पूर्ण ब्यवहार देखना फिर तो भाव-विह्वल होना जायज़ था। पूरा दिन बिताने को जी चाहा था उनके साथ, लेकिन समयाभाव के करण ज़्यादा ठहर न सकी। इतने बड़े कवि जिन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया हो, अनेक पुरस्कारों से पुरस्कृत किया गया हो, फिर भी वे इतने सरल हैं, उनके हृदय की यह सहजता उनके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देती है। आते समय ढेरों आशीर्वाद की सौग़ात दी उन्होंने। जिस स्नेह से मेरे सिर पर हाथ फेरा था, वह स्पर्श आज भी मुझे स्मरण है। जो पुस्तक ''हाशिये का गवाह'' उन्होंने मुझे भेंट की, वह सौग़ात आज मेरे लिए अमूल्य निधि है और जीवन पर्यन्त रहेगी।

वह प्रोत्साहन भरी बातें कैसे विस्मित करूँ, घर वापस आने के बाद भारती जी से फ़ोन करवाते और फिर बात करते .....पहुँच गयी सरिता अच्छे से, जी सर ....घबराना मत अपने शोध का कार्य अत्यंत लगन से करना, अपने कर्म क्षेत्र में जरा सा भी कोताही मत करना....।

आज वे मौजूद नहीं है लेकिन उनके प्रोत्साहित करने वाले शब्दों की अनुगूँज आज भी मेरे मन में मौजूद है।

उनके घर के अन्दर उनका खुद का पुस्तकालय है, जिसमें दुनिया की लगभग वे सभी किताबें हैं, जो उन्हें प्रिय थीं। उनके घर के कोने-कोने में पुस्तकें ऐसी सुशोभित हो रही थी जैसे घर की साज-सज्जा (decorative article) का हिस्सा हों। भारती जी मुझे उनके लाइब्रेरी में ले गईं। वहाँ जाकर मैंने देखा कि एक रचनाकार किस प्रकार किताबों के ज़रिये देश-विदेश से अपना नाता जोड़ता है। उनके अलावा जिन्हें भारत के महान ग्रन्थ होने सम्मान दिया जाता है, वे सारी पुस्तकें, चाहे वह गीता हो, रामचरित मानस हो, वेद-उपनिषद हो, सभी वहाँ पर उपस्थित थीं। कवि कुँवर जी कहते थे, ये आध्यात्मिक पुस्तकें मेरी प्रेरणा स्रोत हैं, इसलिए मैं इन्हें अपने आप से विलग नहीं करता। लेखन का कार्य कुँवर जी को विरासत में नहीं मिला था, लेकिन फिर भी उनके व्यक्तित्व में एक सहज संवेदना और ऐसी आत्मीयता थी, जो प्रत्येक साहित्यकार को उत्तराधिकार होने पर भी प्राप्त नहीं होती। अपनी गम्भीर और सूक्ष्म दृष्टि से उन्होंने जीवन के आशावादी मूल्यों की तलाश की और अपनी सहज सरलता और आत्मीयता से उसे सब ओर दूर-दूर पहुँचाया।

कभी-कभी जो व्यक्ति हमें प्रिय होता है, जो वस्तु हमें प्रिय होती है हम उसे अत्यंत ही तल्लीनता से देखते हैं और थकते ही नहीं। जीवन का सत्य भी ऐसा ही होता है। जो बहुत आत्मीय होता है वह चिर नवीन भी होता है इसलिए हम उसे बार-बार देखना चाहते हैं, महसूस करना चाहते हैं।

कुँवर जी ने जीवन में अनके संघर्षों को झेला और किसी संघर्ष में उन्होंने जय-पराजय की अनुभूति नही की क्योंकि पराजय उनके लिए कोई मायने नहीं रखती।

सारी तकलीफ़ों को वे पथ के बसेरे की तरह छोड़ते चले गए। ऐसा कवि जो जीवन को इतनी सरलता से लेता हो, संघर्षों को इतना सहज मानकर चलता हो..मैं यह मानती हूँ कि वह आकर फिर जाता नहीं और न ही वह भूलने के योग्य है बल्कि सदा स्मरणीय है। वे आज भी मुझे अपनी रचनाओं के माध्यम से, फूलों-पत्तियों के माध्यम से, धरती आकाश के माध्यम से अपना स्नेह और आशीर्वाद दे रहे हैं।

मेरा उद्वेलित मन अक्सर अनायास उन्हीं की पंक्तियों में सांत्वना पाता है-

''कि लौट आओ प्राण
पुनः हम प्राणियों के बीच
तुम जहाँ कहीं भी चले गए हो
हम से बहुत दूर
लोक में परलोक में
तम में आलोक में
शोक में अशोक में
लौट आओ प्राण पुनः
हम प्राणियों के बीच
तुम जहाँ कहीं भी चले गए हो
हमसे बहुत दूर।''

और फिर से लौट आने को लेकर लिखी गई उनकी ही यह प्रसिद्ध कविता पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि वे कभी भी लौट आएँगे। कवि वैसे भी कहीं जाता ही कहाँ है। कवि अपनी रचनाओं के साथ फिर-फिर लौटता है, बार-बार लौटता है, समय में, समाज में, सभ्यताओं में, संस्कृतियों में....

अबकी बार लौटा तो
बृहत्तर लौटूँगा
चेहरे पर लगाए नोकदार मूँछें नहीं
कमर में बाँधे लोहे की पूँछे नहीं
जगह दूँगा साथ चल रहे लोगों को
तरेर कर न देखूँगा उन्हें
भूखी शेर-आँखों से

अबकी बार लौटा तो
मनुष्यतर लौटूँगा
घर से निकलते
सड़कों पर चलते
बसों पर चढ़ते
ट्रेनें पकड़ते
जगह बेजगह कुचला पड़ा
पिद्दी-सा जानवर नहीं

अगर बचा रहा तो
कृतज्ञतर लौटूँगा

अबकी बार लौटा तो
हताहत नहीं
सबके हिताहित को सोचता
पूर्णतर लौटूँगा

❑❑❑

बी 1 /304, अनुराग बिल्डिंग, सेक्टर-6,
शांति नगर, जैन मंदिर के पास, मीरा रोड
पूर्व, थाणे, 401107, महाराष्ट्र
मोबाइल 9820513674

फिल्म समीक्षा के बहाने

मुज़फ्फरनगर - बर्निंग लव स्टोरी, न कथा, न घटना, न समस्या, सिर्फ चूँ चूँ का मुरब्बा

वीरेन्द्र जैन

2013 में घटित मुज़फ्फरनगर की घटनाएँ अभी इतनी पुरानी नहीं हुई हैं कि पढ़ने लिखने वाले लोग उसकी सच्चाई भूल गए हों। अब बालीवुड की जो फ़िल्में केवल व्यवसाय की दृष्टि से बन रही हैं वे बहुत ख़राब बन रही हैं और तकनीक के तमाशे से मजमा जमा कर कुछ बाहुबली भले ही व्यवसाय कर लें किंतु उन्हें आमिर खान की तरह कला के सहारे व्यावसायिक सफलता प्राप्त करने की श्रेणी में बहुत नीचे के पायदान पर जगह मिलेगी।

हरीश कुमार निर्देशित यह फ़िल्म अनेक तरह की आशंकाओं, आकांक्षाओं, और अनिश्चितताओं से घिर कर चूँ-चूँ का मुरब्बा बन कर रह गई है। ऐसा लगता है कि यह फ़िल्म मुज़फ्फरनगर की कड़वी सच्चाइयों को दबाने के लिए बनाई गई है, क्योंकि इसी घटना के पीछे छुपे षड्यंत्रों को प्रकट करती कुछ डाक्यूमेंट्रीज़ और वीडियो फ़िल्में बनाई जा चुकी हैं जिन्हें घटना के ज़िम्मेवार लोगों द्वारा सार्वजनिक प्रदर्शन से रुकवा दिया गया है, किंतु फिर भी वे बुद्धिजीवियों के बीच देखी / दिखाई जा चुकी हैं। निर्माता ने सत्तारूढ़ दल के सांसद और अब मंत्री से इस फ़िल्म निर्माण के लिए आशीर्वाद लिया है, इसलिए उनका धन्यवाद भी किया है जो कभी मुम्बई के पुलिस कमिश्नर रहे हैं।

मुज़फ्फरनगर में घटित जिस घटना से वहाँ संहार और प्रतिसंहार की घटनाएँ घटीं, उसको थोड़ा सा बदल कर कहानी का प्रारम्भ किया गया है। पहले एक समुदाय द्वारा और फिर दूसरे समुदाय द्वारा इकतरफा हिंसा की घटनाएँ घटी थीं। लोकसभा के आगामी चुनावों को देखते हुए राजनीतिक दलों ने इस आग में घी ही नहीं डाला अपितु आग को फैलाने के लिए हवा भी चलवाई। फ़िल्म में राजनीतिक दलों के एक पक्ष को दोषी बताया गया है जबकि दूसरे पक्ष के लोग जो बड़े दोषी थे व जिन्होंने नकली वीडियो बना कर उसे अपलोड कर भावनाएँ भड़ाकाईं थीं, उनकी चर्चा ही नहीं की है। इतना ही नहीं उन आरोपियों को चुनाव प्रचार के दौरान एक दल के बड़े-बड़े नेताओं द्वारा सम्मानित भी किया गया था, उन्हें टिकिट भी दिया गया था और बाद में मंत्री भी बनाया गया। इस दुखद घटना में लगभग आधे लाख अल्पसंख्यक लोग सुविधाविहीन कैम्पों में महीनों भूखे-प्यासे व स्वास्थ सुविधाओं से वंचित होकर लम्बे समय तक रहे उनकी कोई झलक तक फ़िल्म में नहीं दिखाई गई है।

किसी दुर्घटना के साम्प्रदायिक दंगे में बदलने के पीछे बहुत सारी कारगुज़ारियाँ होती हैं जो वर्षों से चल रही होती हैं। कुछ संगठन इसके लिए निरंतर काम करके समाज में नफ़रतों के झूठे-सच्चे इतिहास के सहारे समाज को साम्प्रदायिक दृष्टि से संवेदनशील बनाते रहते हैं, और अब ऐसे संगठन दोनों तरफ काम कर रहे हैं। ध्रुवीकरण का चुनावी लाभ हमेशा बहुसंख्यकों को मिलता है इसलिए ज़्यादातर वे आक्रामक और अल्पसंख्यक रक्षात्मक होते हैं। जब अल्पसंख्यक को उत्तेजित कर दिया जाता है तो कई बार भय की अवस्था में वह भी पहले हमलावर हो जाता है।

इस घटना से उठाई गई कथा पर लगभग तीस साल पहले वाली बम्बइया फ़िल्मों के ढाँचे में पिरो दिया गया है जिसमें हीरो का हीरोइन से उलझ कर प्रथम दृष्ट्या प्रेम हो जाता है। हीरो और हीरोइन अलग धर्मों के परिवार से हैं। शहर में शूटिंग की प्रैक्टिस के लिए दिल्ली शहर में रह कर आया हीरो दस-बीस लोगों को अकेले ही ठिकाने लगा देता है और उनकी लाठी, डंडे, बन्दूकें काम नहीं आते। नायक या खलनायक के साथ घटी हिंसा के अलावा अन्य किसी के साथ घटी हिंसात्मक घटनाएँ पुलिस और कानून का मामला नहीं बनतीं। कहानी में अनावश्यक रूप से गीत और नृत्य ठूँसे गए हैं जिनकी अस्वाभाविकता से फ़िल्म के विषय की गंभीरता नष्ट होती है। हीरोइन कुछ ही दिनों में आईपीएस होकर सीधे एसपी के रूप में अपने होम टाउन में पदस्थ हो जाती है व ऐसी टाइट वर्दी पहनती है, जिससे वह एसपी से ज़्यादा हीरोइन दिखाई दे। हीरो देव शर्मा सीधे-सीधे अमिताभ की पुरानी एंग्री यंगमैन की छवि से प्रभावित है व वैसा ही नकल करने की असफल कोशिश कर रहा है, वहीं हीरोइन ऐश्वर्या देवान उसी दौर की किसी नायिका की तरह व्यवहार करते हुए ओवरएक्टिंग करती हैं। कुछ संवाद ज़रूर अच्छे लिखे गए हैं किंतु ग़लत डायलाग डिलीवरी और कमज़ोर पटकथा के कारण वे थेगड़े से लगते हैं। खलनायक के रूप में अभिनेता अनिल जार्ज अवश्य प्रभावित करते हैं।

नायक नायिका का पारिश्रमिक फ़िल्म निर्माण के बज़ट का सबसे बड़ा हिस्सा होते हैं किंतु इस फ़िल्म में वे नए हैं, इसलिए यह कम लागत की फ़िल्म है क्योंकि शूटिंग के लिए भी बड़े सेटों की ज़रूरत नहीं पड़ी है और सब कुछ पश्चिम उत्तर प्रदेश के किसी गाँव, हवेली या ड्राइंग रूम में हो गई है। कम लागत के कारण इसे व्यावसायिक रूप से असफल नहीं कहा जाएगा किंतु फ़िल्म के रूप में ना तो यह कलात्मक, न घटनाप्रधान, न मनोरंजक, न ही यथार्थवादी, न कुशल अभिनय निर्देशन सम्पन्न फ़िल्म कही जा सकती है। अगर भविष्य में नायक नायिका सफल होंगे तो यह फ़िल्म उन्हें पहले-पहल प्रस्तुत करने के लिए उल्लेखित होगी।

❐❐❐

2/1 शालीमार स्टर्लिंग, रायसेन रोड
अप्सरा टाकीज के पास भोपाल (म.प्र.) 462023 मोबाइल
09425674629

पेपर से पर्दे तक... (भाग-6)

सिनेमा एक कला और तकनीक

कृष्णकांत पण्ड्या

(कृष्ण कांत पण्ड्या एक जाने-माने फ़िल्म निर्देशक हैं, जिन्होंने पूर्व में कई फ़िल्मों में सह-सम्पादन का कार्य किया। पश्चात् सहायक निर्देशक के रूप में, 'थोड़ी सी बेवफाई', 'बुलंदी', 'अहिस्ता-आहिस्ता', 'दिल आख़िर दिल है', 'पिघलता आसमान', 'झूठा-सच', 'लव-86' जैसी फ़िल्में कीं।

फ़िल्म 'सूर्या' और 'पुलिस-पब्लिक' के मुख्य सहायक निर्देशक एवं 'हत्या' व 'थोड़ा तुम बदलो थोड़ा हम' के एसोसिएट निर्देशक के रूप में कार्य किया। उन्होंन भारतीय फ़िल्माकाश में बतौर निर्देशक अपनी पहली ही फ़िल्म 'पनाह' में एक सशक्त व संवेदनशील फ़िल्मकार की जगह स्थापित कर ली। तत्पश्चात् फ़िल्म 'बेदर्दी', 'क्योंकि हम दीवानें हैं' (रिलीज बाकी) निर्देशित की। इसके अलावा उन्होंने कई टीवी सीरियल्स का भी निर्देशन किया, जिनमें 'पृथ्वीराज चौहान', 'जय श्री कृष्ण' और 'चितौड़ की रानी पद्मीनी का जौहर' प्रमुख हैं।

हालिया उनकी निर्देशित-सम्पादित-पट्कथा लिखित फ़िल्म 'बियाबान-द कर्स बाम विमन' को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्म फेस्टिवल्स में काफी पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं और यह फ़िल्म शीघ्र ही प्रदर्शित होने वाली है। जिसकी कहानी-संवाद एवं एक गीत पंकज सुबीर ने लिखे हैं।)

पिछले लेखों में मैंने आपको फ़िल्मों की कहानी के कॉन्सेप्ट से लेकर पटकथा एवं संवादों का तुलनात्मक अध्ययन कराया। इसी क्रम में इस बार साहित्यिक लेखन व फ़िल्म के लेखन में एक बड़े अन्तर के बारे में आपसे जानकारी साझा करूँगा, साहित्यिक कहानी में ज़्यादातर एक या दो रस या भावनाएँ होती हैं, जो उस कहानी को पढ़ते समय पाठक महसूस करता है या उसमें बहता चला जाता है। उपन्यास में करीब-करीब सारे रस होते हैं अगर आवश्यक हों तो, पर हाँ कहानी से ज़्यादा रस उपन्यास में होते हैं। ये मैं मोटा-मोटा विश्लेषण कर रहा हूँ। ...अवश्य ही कभी-कभी उपन्यास बहुत ही कम रसों वाले भी होते हैं और कहानियाँ ज़्यादा रसों वाली भी होती हैं। मेरा एक कॉमन पाठक के लिए ये सोचना है कि अगर गुलशन नन्दा और वेदप्रकाश शर्मा के उपन्यासों को लिया जाए तो मसाला फ़िल्म, रोमांटिक और थ्रिलर एलिमेन्ट की क्रमशः बनेगी और बनी भी हैं, जिनमें सिर्फ वीभत्स रस की अक्सर कमी होगी, वर्ना सभी रस होंगे और थे। और प्रेमचन्द की कहानियों पर जो भी फ़िल्में बनी हैं उनमें सामाजिक ऊँच-नीच, ग़रीबी की वेदना और कुरीतियों पर व्यंग्य हावी रहा। वे भरपूर मनोरंजक फ़िल्में नहीं थीं पर हाँ समाज सुधारक-विचारोत्तेजक ज़रूर थीं उनमें मुख्यतः गोदान, कफ़न, तहरीर, बाज़ार-ए-हुस्न, पूस की रात, नमक का दरोगा, होरी और निर्मला आदि हैं।

और जब की गुलशन नन्दा की भव्य सफल मसाला, पारिवारिक, रोमान्टिक और भावनाप्रधान फ़िल्में थीं, जो खूब चलीं। जिनमें, काजल, कटी पंतग, खिलौना, शर्मिली, दाग, नील कमल, नया ज़माना, महबूबा, सावन की घटा, पत्थर के सनम, झील के उस पार, जुगनू, जोशीला, अजनबी, बिंदिया चमकेगी, बादल, नज़राना और फूलों की सेज हैं। उनकी दाग़ फ़िल्म से यश चोपड़ा निर्माता भी बने। गुलशन नन्दा के उपन्यासों को जहाँ लाखों लोगों ने पढ़ा वहीं उन पर बनी फ़िल्मों को करोड़ों लोगों ने देखा और सराहा। उनकी लेखनी से बनी फ़िल्मों में जीवन के सभी रस होते थे। जिनमें प्यार की छटपटाहट, प्यार के त्रिकोण, प्यार में पुनर्जन्म की बेचैनी- एक तरह से युवा वर्ग को प्यार के कल्पना लोक में हिंड़ोलों पर हिचकोले खिला कर मदहोश कर देने का काल्पनिक संसार रचा है उनके दिमाग़ ने। उनके इस करतब को फ़िल्म विधा के सभी विभागों ने खुले दिल से अपनी रचनाशीलता प्रदान की है। जिनमें मुख्यतः संगीतकार लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल, गीतकार आनन्द बख्शी, सभी निर्देशक व कलाकर हैं। भारतीय सिनेमा जगत में ये एक रोमान्टिक काल था। इसी कड़ी में लेखक द्वय सलीम-जावेद आए जिन्होंने एक महानायक को पर्दे पर जन्म दिया। उन्होंने भी मसाला फ़िल्में लिखीं पर उनकी लेखनी ने क्रोध, मार-धाड़ और बदले को प्रमुख रखा और रसों के साथ। इस जोड़ी ने अपनी शर्तों पर काम लिया और लेखक को अपना सम्मान, स्थान और अच्छा पारिश्रामिक लेने के योग्य अधिकार दिलाया। यह पहली बार था जब लेखक को पोस्टर पब्लिसिटी में स्थान मिला, यहाँ तक कि उनके नाम से फ़िल्मों का व्यापार अच्छा होने लगा। उनकी लिखी फ़िल्मों में मुख्य हैं शोले, दीवार, ज़ंजीर, मज़बूर, क्रान्ति, काला पत्थर, सीता और गीता, डॉन, मिस्टर इंडिया, शान, ईमान-धरम, चाचा-भतीजा, यादों की बरात, अन्दाज़, हाथी मेरे साथी और जानेमन, तूफान और बिल्ला-2, (दोनों तेलगू)। इस दौर में फ़िल्मों में लास्ट एंड फाउंड फॉर्मूला आया और भरपूर एक्शन ने अपना साम्राज्य जमाकर फ़िल्मों से रोमांस को पीछे धकेल दिया। समाज की भाई गिरी, देश का भ्रष्टाचार और नायक की उसके ख़िलाफ की लड़ाई फ़िल्मी पर्दे पर पेपर से उभर आई। फ़िल्मों से फ़िल्मों की नज़ाकत, मासूमियत और मोहब्बत की रूमानियत चुपके से मुख्यधारा के सिनेमा से खिसकती चली गई।

परन्तु सलीम-जावेद की क़लम ने जो आम दर्शकों के साथ-साथ ख़ास दर्शकों में भी प्रसिद्धि पाई, जो लम्बे समय तक कायम रहेगी, शोले ने तो शिखर छू लिया है।

इस तरह की प्रसिद्धि कैसे आती है? फ़िल्म निर्माण के सभी

पहुओं के साथ-साथ ख़ासकर दर्शक के मनोविज्ञान, बल्कि मानवीय मनोविज्ञान को समझना होगा और वो ये कि जिस तरह भोजन में अलग-अलग स्वाद की एक निश्चित मात्रा ही खाई जा सकती है उसी तरह भावनाओं की मात्रा भी फ़िल्म में नपी-तुली होनी चाहिए, वर्ना फ़िल्म में दर्शक ऊबने लगता है। ज़्यादा लम्बा रोमांस चलेगा तो प्रतिक्रिया आएगी, ''चल अब बस कर बहुत हुआ छोड़ उसे।''

...हाँ, हाँ सही है, है ना?

और कोई ज़्यादा भाषण देगा तो प्रतिक्रिया होगी ''ए चल हो गया, हमको मत सिखा।'' और ज़्यादा लम्बा एक्शन सीक्वेंस होगा तो लोग कुर्सी पे हिलने-डुलने लगेंगे। और अगर ज़्यादा मात्रा में हास्य या रुदन होगा तो सुस्ताने लगेंगे। ये फ़िल्म में होगा क्यूँकि यहाँ हम दृश्य और ध्वनि से रूबरू कराते हैं दर्शकों को, जबकि पढ़ने में पाठ की अपनी कल्पना चलती है उन भावों में। यहाँ मैं सिर्फ भावनाओं की मात्रा की बात कर रहा हूँ न कि ऊब पैदा करने वाली दूसरी वजहों की। पढ़ने में पाठक लम्बे प्रेमालाप का या सस्पेंस का या कॉमेडी के संवादों का मज़ा लेता रहेगा पर फ़िल्म में उबाऊ हो जाएगा। फ़िल्म में एक ही तरह की भावना को एक अन्तराल बाद ब्रेक देना होगा दूसरे रस द्वारा। मैं नौ रसों वाले रस की बात कर रहा हूँ। हाँ, हाँ, हाँ!!!

इसी प्रकार ये रस की मात्रा, इसका अन्तराल कम भी नहीं होना चाहिए। रुदन के लिए थोड़ा ज़्यादा समय देना होता है, फिर ये पिछले घटना क्रमों पर भी निर्भर करता है। ऐसी ही शृंगार रस के लिए भी है। कम हो गया तो ''यार मज़ा नहीं आता।'' और ज़्यादा हो गया तो ''अबे छोड़ उसे।'' प्रतिक्रिया मिलेगी। रोज़मर्रा के जीवन में भी कोई लगातार 3-4 मिनिट से ज़्यादा ना तो हँस सकता है ना रो सकता है। एब्नॉर्मल लोग और हालात की बात अलग है, हाँ हाँ सही है। आज़मा लेना कभी। अच्छे सेन्सेबल लेखक, डायरेक्टर और सम्पादक इसे अच्छी तरह जानते हैं। शोले फ़िल्म की ट्रेन फाइट हो या अमिताभ बच्चन वाला माउथ ऑर्गन बजाने वाला दृश्य हो, जब जया लेम्प जला रही होती हैं। अब ये बात अलग है कि गाँव में ऊँची पानी की टंकी है पर इलेक्ट्रिसिटी नहीं है। हाँ, हाँ, हाँ, हाँ!!!! ये तो डायरेक्टर और लेखकों की कन्विक्शन है कि दर्शक लॉजिक छोड़कर भावनाओं में बह जाता है। चाहे ताँगे की रेस हो डाकुओं के साथ, चाहे धर्मेन्द्र का टंकी वाला सीन हो मौसी जी वाला, या फिर ठाकुर के पूरे परिवार को गोलियों से ख़त्म करने वाले दृश्य के बाद लाशों के साथ सिर्फ झूले की चुईं चूँ, चुईं चूँ वाले दृश्य की लम्बाई हो। सभी रसों का सभी भावनाओं का सही-सही अन्तराल रखा गया है। है ना मज़ेदार कला और तकनीक का सामन्जस्य?

अब मैं आपको थोड़ी देर के लिए बहुत पीछे ले चलता हूँ क्योंकि सफल फ़िल्मों के लिए अच्छी कहानी को बहुत अच्छी पटकथा में ढाल कर सटीक संवादों से मनोरंजक शूटिंग स्क्रिप्ट बनाने वालों के काम को भी जान लिया जाए। वक़्त के साथ और उस दौर के लोगों के लेखकों के साथ के रवैये के कारण उन्हें इतना स्थान नहीं मिला जितना मिलना चाहिए था। वो तवज्जो उन्हें नहीं मिली जिसके वे हक़दार थे। भारतीय सिनेमा का जन्म के काल से लगाकर मदर इंडिया तक के सभी लेखकों को नमन करके हम प्रारम्भ करते हैं वजाहत मिर्ज़ा साहब से जिन्होंने 1939 में औरत फ़िल्म से बहुत शोहरत पाई, इसी कहानी पर वापस महबूब खान ने 1957 में भारत की पहली ऑस्कर नोमिनेशन फ़िल्म मदर इंडिया बनाई। वजाहत मिर्ज़ा साहब की लिखी भारत की शान फ़िल्मों में (1960 में) मुगल-ए-आज़म, गंगा जमना (1961), लीडर (1964), शतरंज (1969), गंगा की सौगंध (1978), लव एन्ड गॉड (1986) प्रमुख हैं। ये सभी फ़िल्में बहुत ही भव्य थीं। भव्यता के साथ कहानी की गति व मनोरंजन का पूरा का पूरा ख़याल रखना बहुत सूझ-बूझ का कार्य होता है। भारतीय हिन्दी सिनेमा को परिपक्व बनाने में के.ए. अब्बास का नाम महत्त्वपूर्ण है, जिन्होंने अपनी लेखनी से नया संसार (1941), डॉ. कोटनिस की अमर कहानी (1946), धरती के लाल (1946), शहर और सपना (1963), सपनों का सौदागर (1968), सात हिन्दुस्तानी (1969) (इसी फ़िल्म से भारतीय सिनेमा के महानायक अमिताभ बच्चन के आगमन का श्रेय अब्बास जी को जाता है।) मेरा नाम जोकर (1969), दो बूँद पानी (1971), बॉबी (1973) (जिसने नौजवानों के दिलों की बात बड़े ही खुलेपन से की.... और मैंने भी 6 बार देखी।) जैसी फ़िल्में दी। इनकी फ़िल्म परदेसी को कॉन्स फ़िल्म फेस्टीवल में नोमिनेट किया था और के.ए. अब्बास साहब को 1966 में बर्लिन फ़िल्म फेस्टीवल में जूरी बनाया था। ये लेखक निर्देशक थे।

मिडास टच के आशीर्वाद के साथ आए सचिन भौमिक। इन्होंने फ़िल्म की पटकथा में बहुत सफल प्रयोग किए। रोमान्स के साथ सस्पेंस, थ्रिलर, मर्डर मिस्ट्री, कॉमेडी आदि, उनकी प्रमुख फ़िल्में थीं : लाजवंती (1958), अनुराधा (1960), ज़िद्दी (1964), आए दिन बहार के (1964), जानवर (1965), लव इन टोकियो (1966), आए दिन बहार के (1966), एन इविनिंग इन पेरिस (1967), ब्रह्मचारी (1968), आराधना (1969), आन मिलो सजना (1970), कारवाँ (1971), अन्दाज़ (1971), दोस्ती (1974), खेल खेल में (75), ज़िन्दगी (1976), हम किसी से कम नहीं (1977), आज़ाद (1978), गोलमाल (1979), क़र्ज़ (1980), सौदागर (1991), करण-अर्जुन (1995), कोयला (1997), दुश्मन (1989), आ अब लौट चलें (1999), कोई मिल गया (2005), क्रिश (2006), करीब 50 वर्षों तक समयानुकूल लिखते रहना वो भी सफलतापूर्वक, है ना, अद्भुत बात। सचिन भौमिक का नाम पिछले 40 सालों में लगभग हर 5 फ़िल्मों से 1 में ज़रूर होता था। इस दौर के लेखक अपने साथ किसी दूसरे-तीसरे का नाम साझा करने में अड़ियल रुख नहीं अपनाते थे अगर दूसरे लेखक या निर्देशक का भी हिस्सा लेखन कार्य में होता, वो इसलिए कि फ़िल्म निर्माण को टीमवर्क समझा जाता है। 50 और 60 के दौर में पंडित मुखराम शर्मा जी ने समाज सुधार पर मनोरंजक लेखन किया। उन्होंने बी.आर. चोपड़ा के लिए बहुत प्रभावी फ़िल्में लिखी। उनकी प्रमुख फ़िल्मों थीं। एक ही रास्ता, औलाद, साधना, धूल का फूल, वचन औलाद, संतान दो कलियाँ, जीने की राह, राजा और रंक, दादी माँ, घराना और तलाक़।

वहीं अख़्तर मिर्ज़ा ने भी चोपड़ा साहब के लिए, नया दौर, वक़्त लिखीं जो बहुत सफल रहीं। उनकी बावरे नैन, अब दिल्ली दूर नहीं, मोहब्बत इसको कहते हैं और धुन्ध जैसी संस्पेंस सामाजिक-रोमांटिक फ़िल्में थीं और उर्दू साहित्य से इस्मत चुगताई ने मुस्लिम स्त्री सेक्स मानसिकता पर फ़िल्में लिखीं। उनकी गरम हवा (1975), आरज़ू (1950), सोने की चिड़िया (1958), जुनून (1978), बहुत चर्चित व प्रसिद्ध फ़िल्में थीं। ये एक महान् लघु कथा लेखिका थीं जिन पर फ़िल्मकारों ने फ़िल्में बनाई।

पुन: मैं एक ऐसे स्क्रीन राइटर का ज़िक्र करूँगा जिनके बगैर व्यवसायिक सिनेमा अमिताभ बच्चन और खासकर प्रसिद्ध निर्माता-निर्देशक मनमोहन देसाई जी की कहानी नहीं बनती। उनका नाम है प्रयाग राज। 70 और 80 के दशक में हर 5वीं सफल फ़िल्म में एक फ़िल्म की पटकथा उनकी होती थी। वे बहुत ही सम्मानित लेखक थे जिनकी निम्न फ़िल्मों ने ज़बरदस्त मनोरंजन किया व आज भी करती हैं, वे हैं : अमर अकबर एंथनी (1977), परवरिश (1977), सुहाग (1997), नसीब (1981), देश प्रेमी (1982), कुली (1983), गिरफ्तार (1985), मर्द (1985), गंगा जमुना सरस्वती (1988), अजूबा (1991), ज़मानत (2006), आ गले लग जा (1973), रोटी (1974), पोंगा पंडित (1975), धरम करम (1975) और दीवाना मस्ताना (1997)।

जहाँ मुख्यधारा का सिनेमा लिखा जा रहा था वहीं समानान्तर सिनेमा भी ख़ूब लिखा जा रहा था, जिनमें जो नाम उभर कर आया वो है गुलज़ार साहब का एक बहु आयामी व्यक्तित्व, लेखक, निर्देशक और गीतकार, लेखक यानी कहानी, पटकथा और संवाद सब कुछ!!! 70 व 80 के दशकों के चर्चित फ़िल्मकार। उनकी आनन्द (1970), मेरे-अपने (1971), गुड्डी (1971), कोशिश (1972), परिचय (1972), अचानक (1973), नमक हराम (1973), खुशबू (1975), चुपके-चुपके (1975), आँधी (1975), किताब (1977), किनारा, ग्रह प्रवेश (1979), नमकीन (1982), अंगूर (1982), मासूम (1983), न्यू दिल्ली टाइम्स (1986), इजाज़त (1987), लेकिन (1990), रूदाली (1993), माचिस (1996), साथिया (2002), वे इन फ़िल्मों ने वास्तविक सिनेमा से- समानान्त सिनेमा से प्रबुद्ध वर्ग का मनोरंजन किया। इन फ़िल्मों में गीत-संगीत ने चार चाँद लगा दिए।

इनके अलावा ऋत्विक घटक (मधुमती), अर्जुन देव रश्क (जिस देश में गंगा बहती है), आर.के. नारायण (गाइड), क़ैफी आज़मी (हीर-राँझा), सुजित सेन (अर्थ, साराँश), सुधीर मिश्रा (जाने भी दो यारों), कामना चन्द्रा (प्रेम रोग, चाँदनी, 1942-ए लव स्टोरी) हनी इरानी (लम्हें, डर, क्या कहना, कहो ना प्यार है, कोई मिल गया, कृश), मोईन उद्दीन (थोड़ी सी बेवफाई, बुलन्दी, आहिस्ता-आहिस्ता, दिल आखिर दिल है, झूठा सच, पिघलता आसमान, लव-86, सूर्या, पुलिस पब्लिक और थोड़ा तुम बदलो थोड़ा हम), इन लेखकों ने इनके नाम के साथ की फ़िल्मों के अलावा भी बहुत ही अच्छी फ़िल्में लिखीं। इनके अलावा कई सफल निर्देशकों ने भी लेखन किया उनमें मुख्य हैं, प्रयाग राज, आई.एस. जोहर, ओ.पी. दत्ता, श्याम बेनेगल, गोविन्द निहलानी, शेखर कपूर, सुभाष घाई, करण जोहर, मधुर भंडारकर, राजकुमार संतोष, विशाल भारद्वाज और आशुतोष गोवारिकर।

वर्तमान दौर के लेखकों से मैं आपका परिचय अगले अंक में करवाऊँगा। ये परिचय इसलिए आवश्यक था क्योंकि, लेखकों ने जितने सब्र, गरिमा और समयानुसार प्रगतिशीलता के साथ रचनात्मक कार्य किया वो वंदनीय है। उनके लेखन के बारे में इन लेख से जानकारी प्राप्त कर लेखक वर्ग फ़िल्म लेखन की कला व तकनीक पर प्रयास कर सकते हैं। फ़िल्म लेखन के नज़रिये से इस बार की फ़िल्मों में मैं, टायलेट-एक प्रेम कथा, जब हैरी मेट सेजल, लिपस्टिक, अन्डर माई बुर्का पर चर्चा करूँगा।

टायलेट-एक प्रेम कथा, जितना मज़ाकिया नाम है वैसी ये फ़िल्म है, एक सार्थक मनोरंजन से भरपूर। इसकी पटकथा और संवाद, वाह, वाह, क्या बात है? इसके लेखक द्वय सिद्धार्थ सिंह और गरिमा वहा ने सीन-दर सीन इतना नयापन लिखा है कि फ़िल्म बहुत ही रोचक, मनोरंजनदायक और भावुक हो जाती है। ससुराल में पंडिताई की वजह से और गाँव के घरों में गंदगी ना हो इस चलन से संडास नहीं है। बड़ी उम्र के प्यार में शादी के बाद इसी वजह से विघ्न आ पड़ता है और दुल्हन ससुराल छोड़कर चली जाती है। टूट कर प्यार करने वाले कम पढ़े-लिखे हीरो का अपने ही पंडित पिता से टंटा चलता रहता है। इस विषय को यू.पी. के गाँव और भाषा का अच्छा जामा पहनाया है। सब कुछ 100 प्रतिशत सही व सच्चा लगता है। संवादों की भाषा शब्दों का चयन भी 100 प्रतिशत सही है। हर लेखक को इस फ़िल्म से काफी कुछ फ़िल्मी लेखन सीखने को मिलेगा। संवादों में अतिरंजना और बनावट से कैसे बचा जाय उसका ये फ़िल्म अच्छा उदाहरण है। सिर्फ फ़िल्म के उत्तरार्द्ध को पटकथा में व्यक्तिगत समस्या ही रख कर संवारा जा सकता था क्योंकि, प्रशासन में सुधार की तीव्रता बनावटी लगती है और अड़ियल पिता का बिना भावनाओं में लाए बदलाव के एकदम स्वीकार कर लेना जल्दबाज़ी लगता है।

वहीं शाहरूख खान की फ़िल्म जब हैरी मेट सेजल का लेखन बहुत ही परिपक्व है। कुछ दृश्यों में मानवीय भावनाओं का प्रस्तुति करण और प्यार का अन्तर्द्वंद्व बहुत अलग अन्दाज़ में लिखा गया है। मुख्य पात्रों के मन में एक-दूसरे के प्रति क्या तूफ़ान उठ रहे हैं और कौन क्या सोच रहा है और क्या कहना चाह रहा है एक-दूसरे को स्पष्ट कह देते हैं, ये बहुत ही अनूठे ढंग से व्यक्त हुआ है। इसके लिए, लेखक, निर्देशक और दोनों मुख्य कलाकार श्रेय के हक़दार हैं। दोनों कलाकारों ने ग़ज़ब तरीके से अपने-अपने किरदारों को जीया है, पर कहीं ऐसा लगा कि यह फ़िल्म और भी कम उम्र के कलाकारों के साथ बनाई जाती, तो सफल हो जाती, ख़ासकर शाहरुख की जगह और यंग कलाकार होता, क्योंकि कहानी बहुत ही छोटे इश्यू की है और अब शाहरुख से लार्जर देन लाइफ की अपेक्षा होने लगी है। इस विषय पर मेरा अब भी चिन्तन चालू है। मैं ग़लत भी हो सकता हूँ पर हाँ लेखन बहुत ही अच्छा हुआ, इस फ़िल्म का। प्रेमी-प्रेमिका की क्लिष्ट भावनाओं को शायद पहली बार देखने को मिला इस फ़िल्म में।

आधुनिक नायिका को कोई पराया जवान लड़का बहनजी जैसा समझे ये उसे कतई बर्दाश्त नहीं। वो हॉट और सेक्सी ही सुनना चाहती है। एक जगह वो शाहरुख को इतरा के कहती भी है कि कम से कम उन लड़कों के लिए तो वो बहनजी जैसी नहीं है चाहे शाहरूख उसे बहनजी जैसी समझे। और जब क्लब का गुंडा उसे शारीरिक तौर से छेड़ने लगता है तब वो अपने आपको बेचारा महसूस करती है, पर शाहरूख उसे बचा लेता है वहाँ से, जब की वो ख़ुद वूमेनाइज़र है, उसे उसकी हेंकड़ी ठिकाने लगने दे सकता था। और दूसरी तरफ शाहरुख वूमेनाइज़र होने के बावजूद अनुष्का द्वारा उसके साथ अपना स्त्रीत्व दिखाने के दृश्य में उससे अलग हो जाता है क्योंकि अब तक वो उसकी भोग्या नहीं बल्कि महबूबा बन गई है। इन क्लिष्ट दृश्यों पर बहुत बारीकी से कार्य किया है सभी ने। कहानी में एक और मुख्य और नया मानवीय पहलू व्यक्त किया है, और वो ये कि किसी भी व्यक्ति में एक अलग इन्सान भी छुपा होता है उसे एक घनिष्ठ मित्र या प्रेमी-प्रमिका उस व्यक्ति में से उजाकर कर सकता है। जैसे वूमेनाइज़र हैरी में से एक मोहब्बत करने वाला महबूब सेजल ने ढूँढ़ निकाला, हाँ इसमें दो जगह सेजल के किरदार को विरोधाभासी बना दिया जब वो हैरी के बदले अपने मंगेतर को सही और सच ठहराती है। ये नहीं होता तो फ़िल्म ज़्यादा प्रभावी हो जाती।

और अब बात करता हूँ लिपस्टिक अन्डर बुर्का की। इस फ़िल्म में अलग-अलग उम्र की स्त्री सेक्स भावनाओं पर अच्छा बोल्ड प्रयोग किया है। समाज में कामवासना को हीन मानकर लगाई गई बंदिशों के दुष्परिणामों पर यह फ़िल्म इस्मत चुगताई के लेखन की याद दिलाती है, सामाजिक बंदिशें लड़कियों और स्त्रियों की उमंगों और प्राकृतिक आवश्यकता के आगे रुकावट पैदा कर देती हैं। जिसकी वजह से उन्हें ग़लत रास्ते अपनाने पर मजबूर हो जाना पड़ता है, इसे इस फ़िल्म में लेखिका व निर्देशिका अलंक्रिता श्रीवास्तव ने सटिक तरीके से पेश किया है। यह फ़िल्म एक अच्छा और सफल व्यवसायिक प्रयोग है।

चलिये अब मैं आपको शूटिंग का एक किस्सा बताता हूँ जो मेरे द्वारा निर्देशित पहली फ़िल्म 'पनाह' का है। चार व्यवसायिक क्रिमिनल एक ढाई साल के बच्चे को अगवा कर लेते हैं, पर पहाड़ के धँसने की वजह से उन्हें वहीं वापस रुकना पड़ता है। जहाँ से वो छुपाए बच्चे को उठाकर ले आए थे... मेरी निर्देशक बतौर पहली फ़िल्म चम्बा से 25 कि.मी. की दूरी पर ऊँचाई पर फ़िल्म का सेट लगाया था और ढाई साल के बच्चे की मुख्य भूमिका वाली स्क्रिप्ट में सब तरफ से पंगे ही पंगे थे। बच्चा काम कर पाएगा या नहीं वो अलग रिस्क। क्योंकि बच्चों की मुख्य भूमिका वाली फ़िल्मों में अगर बच्चा दर्शकों द्वारा किन्ही कारणों से एक्सेप्ट नहीं हुआ, तो फ़िल्म पिट जाती है। इसके कई उदाहरण थे लेकिन अब रिस्क और चेलैन्ज उठा लिया सो उठा लिया। मजबूरी भी थी आगे ब्रेक मिले ना मिले।

उसपे एक और पंगा ले लिया कि फ़िल्म में बच्चा प्रार्थना गाएगा (तेरी पनाह में हमें रखना, सीखें हम नेक राह पे चलना)। इस गाने को बच्चे के हिसाब से तुतली आवाज़ में गवाने का भी पंगा नदीम-श्रवण से लिया था। पंगा इसलिए कि ऑडियो वेल्यू ख़राब हो जाएगी, ऐसा उनका कहना था। जबकि ये प्रार्थना हाइलाइट, यू.एस.पी. थी पनाह की।

खैर रोज़ 25 कि.मी. ऊपर जाना होटल से और अच्छे-ख़राब मौसम में शूटिंग कर के वापस आना। ये सिलसिला करीब एक महीना चलने वाला था। मैंने एक मनोविज्ञानिक तरकीब बच्चे के लिए अपनाई, वो ये कि यूनिट के सारे लोगों को कठोर हिदायत दे दी कि बच्चे के साथ सिर्फ मेरा एक ही असिस्टेन्ट बात करेगा और दूसरी उसकी देखभाल के लिए आई उसकी नानी।

और बच्चे के साथ शूटिंग 7 दिन बाद करेंगे इस तरह की शेड्यूलिंग की थी मैंने, पर बच्चा रोज़ाना शूटिंग पर आएगा जिससे वो माहौल में घुल-मिल जाए। साथ ही उसकी नानी को गाने की कैसेट दे दी थी जिससे वो सुनाती रहती थी। उससे उसे गाना याद हो गया।

कहानी में बच्चा सबसे पहले पहलवान प्रवीण कुमार (महाभारत के भीम) से घुल-मिल जाता है फिर रोमेन्टिक हीरो जीत उपेन्द्र से, फिर सिद्धार्थ से आख़िर में नसीरुद्दीन शाह से। तो मैंने इन चारों कलाकारों से उसके साथ इसी क्रम में सेट पर और होटल में व्यवहार करने को कहा, जिससे उपर्युक्त दृश्यों में बच्चे की सच्ची प्रतिक्रियाएँ मिल सकें। इस तरक़ीब ने मेरा काम बहुत आसान कर दिया।

एक सीन में जब नसीरुद्दीन शाह उसे डाँटते हैं तब उस बच्चे का चेहरा बरबस देखने का है, वो हमेशा उनसे सेट पर भी और फ़िल्म में भी डरा-डरा रहता था। और जब बच्चे के डायलाग का पहला शॉट (सीन का एक हिस्सा, जब कैमरा स्टार्ट और बन्द किया जाता है, उसे शॉट कहते हैं।) लेना था उस समय मुझे काटो तो ख़ून नहीं था, साँस अटकी पड़ी थी सबको धीरे से चुप रहने को कहा, माता-पिता और ईश्वर का ध्यान किया और ''साउंड स्टार्ट कैमरा'' और एक्शन की जगह धीरे से मैंने ''बोलो मोहसीन'' (बच्चे का नाम) कहा और बच्चे ने उसी भावुकता से बोला ''मर गए हैं तो उन्हें जलाया?'' पल्लवी जोशी- ''हाँ उन्हें जलाया था।'' बोला और बादल आ जाने की वजह से कैमरा असिस्टेन्ट ने कट बोल दिया। कैमरा रुक गया और मेरा गुस्सा उस कैमरा असिस्टेन्ट पर सातवें आसमान पर, परन्तु मैंने संयम रखा, जिससे बच्चा डर ना जाए। ''कुछ भी हो जाए, मेरे अलावा कोई कट नहीं बोलेगा। जब तक की कोई बड़ी प्रॉब्लम न हो जाए।'' इस हिदायत के बाद फिर सावधानीपूर्वक, वापस शॉट लिया। इसी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ की वजह से सारा काम बच्चे के साथ अच्छे से होता गया। कभी वापस मौका मिले तो देखिएगा 'पनाह'।

आगे भी आप छोटे-बड़े कलाकारों के साथ के छोटे-बड़े सच्चे किस्से मेरे द्वारा जानकर, आनंदित, अचंभित और भयभीत होते रहेंगे।

बड़े-बड़े कामों के लिए बड़े-बड़े पंगे ना लिए तो क्या ख़ाक जिए। हाँ, हाँ, हाँ।

धन्यवाद।

क्रमशः

❑❑❑

2603, ऑबराय स्पलेन्डर
मजास डेपो के सामने, जे.वी.एल.आर.
अंधेरी(पूर्व), मुम्बई 400060
फ़ोन 02228387112

पुस्तक-आलोचना

चौबीस किलो का भूत

अतुल वैभव

पुस्तक: चौबीस किलो का भूत (कहानी संग्रह)
लेखक: भरत प्रसाद
प्रकाशक: साहित्य भण्डार

'जबकि प्रत्येक जाति का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है' (हिंदी साहित्य का इतिहास)। शुक्लजी की यह उक्ति 21वीं सदी के उभरते हुए युवा आलोचक व साहित्यकार भरत प्रसाद के लेखन में अक्षरश: प्रतिबिम्बित होती है। 25 जनवरी सन् 1970 ई. को उत्तर प्रदेश के संत कबीर नगर जिले में जन्में भरत प्रसाद की प्रारंभिक शिक्षा गाँव में और फिर इलाहाबाद में हुई जबकि उच्च शिक्षा (एम. ए., एम. फिल., पीएच. डी.) दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में हुई है। अपने स्वभाव से ही सामाजिक और तार्किक भरत प्रसाद को जेएनयू का माहौल भी उनके अनुकूल ही मिला। उनके अंदर समाज के दबे-कुचले, निम्न वर्ग, शोषित, पीड़ित, गरीब, मज़दूर, स्त्री, आदिवासी, दलित, प्रकृति आदि के प्रति सहानुभूति और संवेदना तथा सत्ता, राजनैतिक व्यवस्था, प्रशासन के प्रति नाराज़गी, आक्रोश, जे.ऐन.यू. में ही पल्लवित और पुष्पित हुआ। उनका लेखन बहुसंख्यक को नहीं बल्कि अल्पसंख्यक को केंद्र में रखे हुए है।

आलोच्य पुस्तक 'चौबीस किलो का भूत' अपने नाम की सार्थकता को प्रमाणित करती है। यह पुस्तक अपने पाठकों को 21वीं सदी में विकास के फलस्वरूप जन्म ली हुई नई समस्याओं से दो-चार करवाती है। अंधा-धुंध विकास ने किस प्रकार गाँव को पहले से और गरीब बनाया है दलित, आदिवासी, स्त्री आदि को और हाशिये पर ला फेंका है। सरकारी संस्थानों में काली कमाई, पुलिस की निष्ठुरता, पूँजीपतियों का स्वार्थ, किसानों की आत्महत्या, गाँव से बेरोज़गारों का शहर में पलायन, बाल मज़दूरी, बड़े-बड़े शहरों में नर्क के समान जीवन यापन करने को विवश बेरोज़गार और मज़दूर, मौलिक अधिकार और शिक्षा की दुर्दशा आदि मुद्दों पर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करने का एक प्रयास किया है और साथ ही इन समस्याओं का निदान भी अपने पाठक को बतलाते हैं। संग्रह की कहानियाँ स्त्री, दलित, किसान और समाज के पीड़ित जन की दुर्दशा का मार्मिक और हृदय विदारक चित्र प्रस्तुत करती हैं। इस संग्रह में कुल आठ कहानियाँ हैं और सभी कहानियों में ऐसा लगता है मानों कहानीकार अपने पाठक को आँखों देखा हाल (भोगा हुआ यथार्थ) सुना रहें हो। संग्रह की सभी कहानियाँ जीवन की बारीकियों, आधुनिक मनुष्य के जीवन की जटिलताओं और समस्याओं को धैर्य पूर्वक पाठक के समक्ष परत-दर-परत खोलती हैं। आधुनिक मनुष्य आज किन-किन समस्याओं से दो-चार हो रहा है, उसको कहानीकार ने बखूबी प्रस्तुत किया है। इनकी कहानियाँ पाठक को पढ़ने के लिए आकर्षित नहीं करतीं, परंतु विवश ज़रूर करती हैं। इन कहानियों को पढ़ कर पाठक की चेतना गतिशील हो जाती है। रचना वही जो सत्य और कल्पना के संयोग से पूर्ण हो, परंतु इनकी कहानियाँ पढ़ते समय ऐसा एहसास होता है मानो हमारे आँखों के सामने ये घटनाएँ हुई हैं या हो रही हैं। इनकी कहानियाँ मात्र कहानी नहीं हैं, बल्कि वर्तमान समय की सच्चाई हैं। कहानी का पाठ करते समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम सभी का भोगा और देखा हुआ यथार्थ ही है।

एक तरफ जहाँ आज तकनीक ने मनुष्य की संवेदनाओं का भोग लगाया है तो वहीं दूसरी तरफ इसने संस्कृति के ऊपर बहुत ही व्यापक पैमाने पर धावा बोला है। आज एक तरफ मनुष्य का स्थान रोबोट लेने लगा है तो वहीं दूसरी तरफ पेड़-पौधों (जंगल) का स्थान कंक्रीट के जंगल लेने लगे हैं। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तकनीक का ही बोलबाला सिर चढ़ कर बोल रहा है। तकनीकी ने जहाँ मनुष्य को अनेक सहूलियतें दी हैं, तो वहीं उससे अधिक मुश्किलें भी। तकनीक ने आज लाखों की संख्या में लोगों को रोज़गार दिया है तो वहीं लाखों और करोड़ों के परंपरागत रोज़गार को छीन भी लिया है। ताँगा, बैलगाड़ी, टाइप राइटर, छोटे-छोटे काम आदि। अब तो बेचारे रिक्शा चलाने वाले भी तकनीक के आगे नतमस्तक हैं। 'जीयो रे हरामी' कहानी इन्हीं सच्चाईयों को हमारे सामने रखती है। - 'इधर दस-पंद्रह सालों से जगह-जगह नदियों पर बड़े-बड़े पुल पसरने लगे हैं, अब जग्गू की आवाज़ कौन सुनता है?' अब नदी में पानी कहाँ है? तीन से चार महीने नदी में पानी होता है बाकी पूरे साल नदी सूखी होती है। बड़े-बड़े बाँध और

जल विद्युत प्रोजेक्ट ने नदी को बहने लायक कहाँ छोड़ा है ? बाकी कसर ग्लोबल वार्मिंग और प्रदूषण ने पूरी कर दी है। कहानीकार दरअसल अंधाधुंध विकास के फलस्वरूप स्वच्छ जल की उपलब्धता में बेतहाशा हो रही कमी की ओर ध्यान आकृष्ट करवाया है। पहले जहाँ बड़े-बड़े शहरों में साफ पानी की कमी थी। आज छोटे-छोटे क़स्बों और गाँवों में भी साफ पानी की उपलब्धता बहुत कम आबादी को नसीब है।

भरत प्रसाद की कहानियाँ यथार्थ की पोल खोलती हैं। सरकार के विकास के दावे को नंगा करती हैं। 'महुआ-पट्टी' कहानी कुछ ऐसे ही यथार्थ को पाठक के समक्ष रखती है। समाज में आज जिस प्रकार अशिक्षा, बेरोज़गारी, ग़रीबी, पुलिस और ठेकेदारों का आतंक है मानों अँग्रेज़ों के राज में हम जी रहे हों। आज़ादी के सात दशक बाद भी भारत के सुदूर गाँवों में विकास से दूर-दूर तक कोई नाता नहीं है। 'छोटी-छोटी दर्जन भर बस्तियों का यह ठंडा-सपाट अंचल सहर की मुख्य सड़क से करीब 12 किमी. के फासले पर है। इस अंचल में उतरने वाले रास्ते टूटे-फूटे, कच्चे और घुमावदार कुछ इस कदर है कि पूछिए मत। आना है चंदनपुर तो 10 बार अपनी धड़कन रुकने के बारे में सोच लीजिए। ' आज सरकार के द्वारा विकास की बड़ी-बड़ी ड़िंगे हाँकी जाती हैं। भारत की विकास दर 7 प्रतिशत से अधिक है, भारत दुनिया में सबसे तीव्र गति से विकास करने वाला राष्ट्र है, भारत दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, भारत महाशक्तिशाली बनने की ओर अग्रसर, इसरो ने एक साथ 100 से अधिक उपग्रह का सफल परीक्षण किया, भारत में बहुत जल्दी बुलेट ट्रेन चलेगी आदि आदि न जाने कितनी बड़ी-बड़ी डीगें सत्ता में बैठे मठाधीशों के द्वारा दी जाती हैं। उन डींगों का सच्चाई से और गाँव की जनता से कोई वास्ता नहीं होता। चुनाव से पूर्व राजनीतिक पार्टियों की घोषणाएँ चुनाव समाप्त होते ही सिर्फ जुमले बन जाती हैं।

विकास की असमानता की ओर भरत प्रसाद अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट करवाते हैं। एक तरफ मुंबई, दिल्ली, पुणे, बैंगलोर में गगनचुंबी इमारतें, बड़ी-बड़ी

गाड़ियाँ, मॉल, मल्टीप्लेक्स, फाइव स्टार होटल नुमा स्कूल और लग्ज़री अस्पताल हैं तो वहीं दूसरी तरफ यूपी, बिहार, बंगाल के गाँव जहाँ आज भी लोगों को पक्के घर (छत) नसीब नहीं हैं, जहाँ खाने को अन्न नहीं है, जहाँ करने को काम नहीं है, जहाँ ग़रीबी, अशिक्षा, बीमारी से हज़ारों बच्चे प्रतिदिन काल के मुँह में समा जाते हैं। फिर भी सरकारें न जाने किस विकास और कैसे विकास की बात करती हैं। क्या हिंदुस्तान का आशय बड़े-बड़े शहरों में रहने वाले पूँजीपति, नेता, ब्यूरोक्रेट्स, अभिनेता और ठेकेदारों से ही हैं? संग्रह की तीसरी कहानी 'किराये का बेटा' इसी असमानता की हृदय विदारक तस्वीर हमारे सामने लाती है। 'शहर में तो सुंदर-सुंदर, रंग-बिरंगी, शीशा बंद गाड़ियाँ चलती हैं। बड़े-बड़े साहब लोग हाकिम-हुक्काम उसमें बैठते हैं। हमारी तक़दीर में यह सब कहाँ भाई।' आज़ादी के 70 साल बाद भी आज का ग़रीब तक़दीर के भरोसे है। अभी देश में नोटबंदी के कारण सैकड़ों जाने गईं, क्या उनमें एक भी पूँजीपति, नेता, ठेकेदार, डॉक्टर, पुलिस अफसर थे? किस विकास की बात करती हैं ये सरकारें? रेलवे का किराया बढ़ाया जा रहा है, जी.एस.टी., इन सब में बेचारा किसान, मज़दूर और ग़रीब ही मारा जा रहा है। कोई हज़ारों करोड़ लेके विदेश भाग रहा है तो कोई सौ और हज़ार की वजह से अल्लाह को प्यारा। देश में हर दिन दर्जनों किसान आत्महत्या कर रहे हैं। किसी भी नेता ने इसकी सुध ली क्या?

21वीं सदी के अंधाधुंध विकास में आज मनुष्य के ऊपर तकनीक का अधिकार हो गया है। आज तकनीक का वर्चस्व जीवन के प्रत्येक स्तर पर होने लगा है। तकनीकी के माध्यम से आज का मनुष्य प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं को भी अपने हिसाब से गढ़ना शुरू कर दिया है। आज किराये की कोख इसी का परिणाम है। आज का उच्च वर्ग धन-दौलत के पीछे इतना बावला हो गया है कि उसे अब बच्चे को अपने कोख में पालने की फुर्सत भी नहीं है। अब किराये पर दूसरे औरत के पेट में रखा जाता है और 9 महीने बाद ले लिए जाता है और उस कार्य के लिए उस अभागिन माँ को कुछ मेहनताना दे दिया जाता है। किसी की मजबूरी है तो किसी का शौक। संग्रह की कहानी 'किराये का बेटा' में रोशनी कहती है- 'बात जब खुल ही गई है तो इसे और ध्यान से सुन लीजिए। इनकी शर्त थी कि ...कि ...मैं अपने पेट से इनको एक बच्चा दूँ। मैं उसे अपने कोख में नौ माह पालूँ, उसे जनम दूँ, मगर पैदा होने के बाद बच्चा इनका हो जाएगा और इसके बदले ये मुझे पति के सम्पूर्ण इलाज के लिए साठ हज़ार रुपये देंगे। यह शर्त हमारी जैसी लाचार औरत के भूखे-प्यासे कंकड़-पत्थर ही खाने की तरह था। हम वक्त के मारे हैं तो क्या, अपनी औलाद का सौदा इस तरह नहीं करते।' आज मशीनें लोगों को संवेदनहीन और अनैतिक बना रही हैं। तकनीक ने प्रकृति प्रदत्त मिली दौलत से खिलवाड़ करना शुरू कर दिया है, और उसका असर मानव समुदाय के शारीरिक विकास पर भी पड़ रहा है। एक तरफ देश में दिखावे के लिए बेटी प्रेम की राजनीति हो रही है तो वहीं दूसरी तरफ आज भी लाखों बेटियाँ जन्म लेने के बाद भी अपने घर-समाज में भेद-भाव का शिकार हो रही हैं । आज भी हमारा समाज स्त्री को बच्चा पैदा करने की मशीन ही समझता है।

स्वास्थ, शिक्षा, और न्याय किसी भी मनुष्य या समाज के जीवन के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व माने जाते हैं। भरत प्रसाद अपनी कहानियों में इन सभी समस्याओं के लिए सत्ता पक्ष को कोसते तथा उसके प्रति आक्रोश प्रकट करते हैं। आज बड़े-बड़े प्राइवेट अस्पताल का फैशन चल पड़ा है। बड़े-बड़े शहरों में ही नहीं बल्कि अब तो छोटे-छोटे कस्बों में भी

प्राइवेट अस्पतालों का चलन शुरू हो गया है। आज अधिकांश मेडिकल के छात्र जिस जनता के टैक्स से सस्ते में पढ़ाई कर के डॉक्टर बनते फिर उसी जनता को वे डॉक्टर लूटने में संकोच भी नहीं करते हैं। आज बड़े-बड़े पूँजीपतियों और सत्ता के दलालों के द्वारा सरकारी अस्पतालों की ऐसी हालत बना दी गई है कि अब निर्धन से निर्धन भी प्राइवेट अस्पताल में ही जाना चाहता है। जरा सरकारी अस्पताल के डॉक्टरों का कु-कर्म तो देखिए। 'किराये का बेटा' के डॉक्टर शीतलाप्रसाद डॉक्टर तो पेशे से हैं ही, शहर में हार्डवेयर का बिजनेस भी करते हैं। 2016 में एक सर्वे आई थी जिसमें यह कहा गया था कि ग्रामीण भारत की जनता अपने कमाए धन की बचत का आधे से ज़्यादा स्वास्थ्य के ऊपर खर्च कर देती है। गाँव में ग़रीबी का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है। अभी कुछ दिन पूर्व की ही बात है जब गोरखपुर के अस्पताल में पूरी दुनिया को शर्मसार कर देने वाली हृदय विदारक घटना हुई। फिर भी दोषियों की आँखें नहीं खुली हैं। उसके बाद भी देश के अन्य स्थानों से ऐसी ही घटनाएँ होती रही हैं।

कहानीकार की लगभग हर कहानी में स्त्री कहीं न कहीं व्यवस्था और सत्ता से सताई और प्रताड़ित होती हुई दिखती है जो की आज का यथार्थ भी है। भरत प्रसाद स्त्रियों को इसी हालत में नहीं छोड़ देते हैं वे उनमें विद्रोह का स्वर देते हैं और उनको अपने हक़ के लिए लड़ने के लिए प्रेरित करते हैं। इनकी कहानियों में स्त्री ही क्रांति का शंखनाद करती है। वे स्त्री को ही भविष्य में समाज- निर्मिति का दायित्व देते हैं, या कहे तो वे नए देश के निर्माण की शुरुआत स्त्रियों से ही करवाना चाहते हैं। पुरुषवादी सत्ता के सामने पुरुष ने तो घुटने टेक रखे हैं परंतु स्त्री अब सशक्त हो रही है वह अब किसी से भी डरने वाली नहीं है। ऐसी ही स्त्री का रौद्र रूप कहानी 'महुआ-पट्टी' में सामने आता है जब वह पुरुषवादी सत्ता के वर्चस्व को तोड़ती हुई नज़र आती है। कहानी की एक स्त्री पात्र कहती है- 'देखो ठेकेदारजी, तोहरे आडर-फाडर से हमके कौनो मतलब नाईं बा। जब अपने ज़रूरत से फालतू दारू बची, तब्ब तोहें मिली।' पिछले 4-5 वर्षों से हम देश में ब्लैक मनी ..... ब्लैक मनी.... सुन -सुन के थक चुके हैं। लेकिन इस भयंकर रोग से मुक्ति तो दूर थोड़ी सी भी राहत नहीं मिली है। वर्तमान सरकार इसी ब्लैक मनी के जुमले पे चुन के सत्ता में आई थी और परिणाम हम सभी के सामने है। भरत प्रसाद का नजरिया एक सच्चे समाज सुधाकर और समाज सेवी की तरह है। वे चाहते हैं कि सामाजिक बुराइयों का खत्म हो और ग़रीब से ग़रीब जन को भी वे सभी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सुविधाएँ मिलें जिसके वो हकदार हैं और जिसके लिए वे नेताओं को वोट देते हैं।

आज हमारे देश के लिए महामारी का रूप धारण कर चुके सरकारी नौकरियों में घूसखोरी का प्रत्यक्ष चित्रण भरत प्रसाद ने अपनी कहानी में किया है। अपनी कहानी- 'जीयो रे हरामी' में एक गाँव का निर्धन मज़दूर अपने प्रतिभाशाली बच्चे को पढ़ाई छुड़वाते हुए कहता है- 'ज़्यादा पढ़ा-लिखा कर भी क्या होगा? हम-तुम जैसे लोगों को नौकरी नहीं मिला करती। आजकल बिना सोर्स-पैरवी के नौकरी पाना सपना है। चला जा बाहर कहीं, और चार पैसा कमाने-धमाने की जुगत भिड़ा।' कहानी के प्रमुख पात्र 'सोनवा' की स्थिति वैसी ही हो गई है, जैसे प्रकार एक नाबालिग लड़की की शादी ज़बर्दस्ती कर दी जाती है। जिस प्रकार से पल भर में ही उस लड़की के सारे सपने सपने ही रह जाते हैं उसी प्रकार 'सोनवा' की स्थिति यहाँ है, जिसे पढ़ने-लिखने के अलावा और कुछ आता ही नहीं। पढ़ने-लिखने की उम्र में उसे मुंबई भेज दिया जाता है जहाँ वह प्लास्टिक की फैक्ट्री में काम करता है और वहाँ मानसिक और शारीरिक शोषण का शिकार होता है। हमारे देश में बाल मज़दूरी नाम के लिए ही बैन है। और अगर बैन भी है तो वह माँ-बाप क्या करेगा जिसे खुद के पेट भरने पर भी आफत है तो वह अपने बच्चों का पेट कहाँ से भर पाएगा।

संग्रह की सभी कहानियों में सत्ता का चरित्र खुल कर पाठक के सामने आया है। सत्ता पक्ष को कभी भी जनता का बोला जाना पसंद नहीं आया है। सभी कहानियों में पुलिस, ठेकेदार, नेता आदि का असली चरित्र बखूबी चित्रित किया गया है। आज आदिवासियों को जल, जंगल, ज़मीन से बेदखल किया जा रह है। इसका दर्द कहीं न कहीं भरत प्रसाद की अंतरात्मा को भी झकझोरती है। बड़े-बड़े प्रोजेक्ट के लिए जमीन अंबानी और अडानी जैसे पूँजीपतियों को दिया जा रहा है। कहीं ज़बर्दस्ती बंदूक के बल पर तो कहीं मूर्ख बना कर उन लोगों को उनकी ही ज़मीन से बेदखल किया जा रहा है। इसका नमूना 'महुआ-पट्टी' कहानी में देखिए जब पुलिस वाले जंगल के मूल निवासियों को किस प्रताड़ित करते हैं। पुलिस कहती है- 'तुम सब ये फोकट का माल लेकर कहाँ से आ रही हो? ऐ-? जंगल से? तुम सब ने बाप का धंधा समझ रखा है। किसी दिन जेल में सड़ाऊँगा, तब समझ में आएगा।' अगर आपको पुलिस का रोब देखना है तो मज़दूर, ग़रीब और पिछड़ों के ऊपर देखिए।

एक तरफ सरकार ''बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ'', स्त्री सशक्तिकरण की बात करती है तो वहीं उनके बाबू, सिपाही और अफसर कहीं भी अकेली स्त्री को अपना शिकार बनाने से नहीं चूकते हैं। सरकारें आधी आबादी को उसके सारे हक़ देने की बात करती हैं परंतु आज तक संसद में तो उन्हें दस प्रतिशत से ज़्यादा टिकट दे नहीं पाए। सब चुनावी जुमला होता है। आज भी गाँव की गरीब निरक्षर स्त्रियों की हालत वैसी ही बनी हुई है जो 70 वर्ष पहले थी या कहें कि आज और ज़्यादा बिगड़ गई है। समाज में आज भेड़ियों की तादाद लाखों-करोड़ों में हो गई है। लड़कियों की खरीद-फरोख़्त हो या उनके साथ दुष्कर्म की घटनाएँ। आज जितने कानून बन रहे हैं स्त्रियों पर अत्याचार उतना ही बढ़ता जा रहा है। बड़े-बड़े लोगों, नेताओं की मिली भगत से ही आज ये कु-कृत्य हो रहा है। 'चौबीस किलो का भूत' कहानी में कहानीकार ने ऐसी ही लड़कियों के कालाबाज़ारी को विषय बनाया है। जंगी मियाँ और कल्लू सेठ जैसे भेड़िये अपने शिकार के लिए नजरें गड़ाए रहते हैं। 'जंगी इन पाँचों मासूमों को ले आया कलकत्ते। मनमाने दामों में बेंच डाला इन्हें! 80 हज़ार, पचास हज़ार, एक लाख। एक लाख में बिकने वाली झुलनी सबसे उम्रदराज थी- 14 साल की। वीज़ा, पासपोर्ट पहले से तैयार। भेड़-बकरी की तरह उसे जहाज़ पर लाद दिया गया है।'

आज मनुष्य जितना शिक्षित हो रहा है उतना ही कुंठित और संवेदनहीन होता जा रहा है।

कहानीकार ने आज देश में व्याप्त धार्मिक गुंडागर्दी या धर्म के नाम पर होने वाले अनैतिक कार्यों की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट किया है। वे धर्म के नाम पर उन पाखंडियों को भी कोसते हुए नज़र आते हैं जो जनता में फूट डालने का काम करते हैं। भरत प्रसाद समाज में कम होती नैतिकता और मूल्यहीनता के ऊपर एक प्रकार से प्रहार करते हैं। 'चौबीस किलो का भूत' कहानी में समाज की अनेक विसंगतियों और पाखंड पर वे चोट करते हैं साथ ही हम पाठकों को इंसानियत की ओर ध्यानाकर्षित करने के लिए प्रेरित भी करते हैं।

भरत प्रसाद विश्वविद्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार और शिक्षा के स्तर में ह्रास का कारण बताते हैं। संग्रह की अंतिम कहानी 'माया महाठगिनी हम जानी' इस संग्रह की सर्वाधिक यथार्थपरक कहानी है। अगर आप विश्वविद्यालय के छात्र हैं या रह चुके हैं (खास कर के शोधार्थी हैं तो) इस कहानी का हर वाक्य ऐसा लगेगा मानों आपके आस-पास की ही किसी घटना से सम्बद्ध है। आजकल विश्वविद्यालय में किस प्रकार का माहौल रहता है, वहाँ के शिक्षक का चरित्र कैसा होता है, शिक्षक और बच्चों का संबंध कैसा होता है खास कर शिक्षक और छात्राओं का इस कहानी में बहुत ही सजीव चित्रण हुआ है। आज विश्वविद्यालय में छात्र अपने भविष्य की चिंता के मारे पढ़ाई छोड़ कर गुरु वंदना में लीन हैं। दिल्ली के एक विश्वविद्यालय में किस प्रकार गुंडागर्दी होती है उसको भी अपने पाठक के सामने रेखांकित करने की सफल कोशिश की है। साहित्य जगत में किस प्रकार पुरस्कारों का खेल चलता है और किस प्रकार रातों-रात दो कौड़ी का रचनाकार प्रसिद्ध साहित्यकार बन जाता है। इस खेल में साहित्य के खिलाड़ियों और कप्तानों की भूमिका को भी रेखांकित किया गया है।

विश्वविद्यालयों में किस प्रकार से गुरु की चाटुकारिता और नकली वंदना की जाती है। किस प्रकार से दिल्ली में कुकुरमुत्ते की तरह लेखक पैदा हो गए हैं, सभी में पुरस्कार पाने की होड़ मची है। जिस लेखक या साहित्यकार से समाज निर्माण की अपेक्षा होती है वहीं अब परोक्ष रूप से अनैतिक कार्यों में संलिप्त है। आजकल फेसबुक, ट्विटर पर लेखक की प्रसिद्धि उसके लेखन को मिले लाइक्स और कमेंट्स से आँकी जाती है। आज फेसबुक और सोशल साइट पर दो लाइन लिख के सभी खुद को साहित्यकार समझने लगते हैं। इन तमाम ऐसी सच्चाईयों को कहानीकार ने पाठक के सामने प्रस्तुत किया है ताकि जिसे हम और आप अपना आदर्श और गुरु मानते हैं उसका एक और भी चेहरा छिपा होता है।

भरत प्रसाद की कहानियाँ भाषा के स्तर पर एक नए मापदंड प्रस्तुत करती हैं। बोलचाल की भाषा के साथ ही गाँव के परिवेश की भाषा है। प्रत्येक क्षेत्र की बोली को कहानी में उसी प्रकार प्रस्तुत किया है। गाँव के निम्न वर्ग, मज़दूर, पुलिस, ठेकेदार सभी की अलग-अलग बोली है। साथ ही आज के इस न्यू मीडिया के युग की भाषा का भी बखूबी प्रयोग किया है। फेसबुक और कम्प्यूटर की भाषा को कहानीकार पात्रों के माध्यम से बुलवाते हैं। कुल मिलकर सभी वर्गों की भाषा का समायोजन है।

भरत प्रसाद ने इस संग्रह में अपने मन की वेदना और यथार्थ को ही बयाँ नहीं किया है बल्कि भारत के यथार्थ और वेदना को प्रकट किया है। दरअसल संग्रह की सभी कहानियों में सामाजिक जीवन के यथार्थ का ज़बर्दस्त समन्वय है। आलोच्य संग्रह की कहानियाँ पढ़ते समय पाठक को ऐसा एहसास करवाती हैं मानों 20-25 वर्ष पहले की बात की जा रही हो। यह देश की विडम्बना ही है कि जो आज लिखा जा रहा वह आज से 20 वर्ष पूर्व को प्रस्तुत कर रहा है। कुल मिलाकर समाज में व्याप्त पुलिस, नेता, ठेकेदारों की तानाशाही, स्त्री, दलित, शिक्षा, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, स्वास्थ्य, किसान की व्यथा को अपनी कहानियों में भरत प्रसाद ने स्थान दिया है। एक प्रकार से इस कहानी संग्रह में आज भूमंडलीकरण के फलस्वरूप जीवन और समाज पर पड़े प्रभावों का यथार्थ चित्रण है।

❐❐❐

शोधार्थी- दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल-vaibhavatul7@gmail.com
मो-7827563795

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद
संपादक
shivna.prakashan@gmail.com

नई पुस्तकें

हसीनाबाद

गीताश्री

गूदड़ बस्ती

प्रज्ञा

यह निश्चित रूप से महिलाओं का समय है। विशेषकर हिन्दी लेखन के संदर्भ में। मैं ऐसा क्यों कह रहा हूँ उसके पीछे कारण है। इस वर्ष के साहित्य के तीन सबसे प्रतिष्ठित सम्मान ज्ञानपीठ सम्मान, व्यास सम्मान और साहित्य अकादमी सम्मान यह तीनों लेखिकाओं के हिस्से में गए हैं। कृष्णा सोबती जी, ममता कालिया जी और नासिरा शर्मा जी को क्रमशः ये तीनों सम्मान दिए गए हैं। यह स्त्री लेखन को लेकर सबसे बड़ी स्वीकारोक्ति है। अब दूसरी बात करता हूँ, संपादक मंडल से जुड़ा होने के कारण मैं दोनों पत्रिकाओं को आने वाली सामग्री को देखता हूँ तथा संपादक मंडल में उस पर चर्चा करता हूँ। पिछले कुछ अंकों को तैयार करते समय हमारी चर्चा में यह विषय हर बार होता है कि कुछ पुरुषों को भी स्थान दिया जाए। यहाँ पर आप 'को भी' पर विशेष ध्यान दीजिए। लेकिन होता यह है कि हर बार लेखिकाओं को ही अधिक स्थान मिलता है। पुरुष धीरे-धीरे पिछड़ रहे हैं लेखन में। पिछड़ रहे हैं, तो उसके कई कारण हैं, उनकी चर्चा फिर कभी....। लेखिकाओं की चार से पाँच पीढ़ियाँ इस समय लेखन में सक्रिय हैं। कृष्णा सोबती जी की नई पुस्तक इसी वर्ष आई है 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' और मुझे लगता है कि उनके बाद की लेखिकाओं में अलग-अलग आयु वर्ग के चार समूह तो लेखन में सक्रिय हैं ही, और इस वर्ष यदि तलाश करेंगे, तो सभी की कोई न कोई पुस्तक विशेषकर उपन्यास इस वर्ष आया हुआ आपको मिलेगा। और उन्हीं में शामिल हैं दो उपन्यास 'हसीनाबाद' और 'गूदड़ बस्ती'। आज हम इन्हीं दोनों उपन्यासों की चर्चा करने जा रहे हैं।

प्रज्ञा और गीताश्री, यह दोनों बहुत सक्रिय कथाकार हैं। दोनों की कहानियाँ ख़ूब चर्चित रही हैं। और अब यह पहला-पहला उपन्यास भी दोनों का लगभग एक साथ ही सामने आया है। कहानी में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद जब आप उपन्यास की दुनिया में कदम रखते हैं, तो बहुत तनाव में घिरे होते हैं। तनाव प्रदर्शन को लेकर होता है। एक और बात यहाँ ये महत्त्वपूर्ण है कि दोनों ही लेखिकाओं ने कहानीकार के रूप में अपने को बहुत अच्छे से स्थापित कर लिया है और अपना एक पाठक वर्ग भी बना लिया है। जब आप किसी एक विधा में स्थापित हो जाते हैं, तो आपके लिए चुनौती और बढ़ जाती है। यह चुनौती अपेक्षाओं की होती है। पाठकों की अपेक्षाएँ। विधाओं में जो अंतर होता है, उसके चलते यह तनाव होता है कि जिस प्रकार हमने एक विधा को साधा, उसी प्रकार हम दूसरी को साध पाते हैं कि नहीं। कहीं ऐसा न हो कि कहावत की भाषा में त्रिवेदी जी, चतुर्वेदी बनने चलें और द्विवेदी बन कर वापस लौट आएँ।

लेकिन, मैं यह कह सकता हूँ कि इन दोनों उपन्यासों के माध्यम से दोनों त्रिवेदी जी, चतुर्वेदी जी बन गए हैं। मतलब यह कि गीताश्री को 'हसीनाबाद' के द्वारा तथा प्रज्ञा को 'गूदड़ बस्ती' के द्वारा अब पहचाना जाएगा। (यह मेरा व्यक्तिगत विचार है कि कथा-लेखक को उसके उपन्यास द्वारा ही पहचान मिलती है। इस विचार से आप असहमत हो सकते हैं।) दोनों ही लेखिकाओं ने उपन्यास की दुनिया में बहुत मज़बूती के साथ, बहुत प्रभावशाली कदम रखा है। दोनों ने दो अलग-अलग दुनियाओं की कहानी को अपने-अपने उपन्यास में विषय बनाया है। और उन दुनियाओं के नाम पर ही अपने उपन्यास का शीर्षक बनाया है। यह हमारे देश, हमारे समाज, हमारी सभ्यता की दो बजबजाती हुई आबादियाँ हैं, बस्तियाँ हैं, जो हमारे लिपे-पुते चेहरे पर किसी बदनुमा दाग़ की तरह सदियों से हैं। इन दोनों ही उपन्यासों में उस यथास्थिति को तोड़ देने की छटपटाहट है, उससे निकलने का संघर्ष है। एक तरफ़ हसीनाओं से आबाद नगर है, तो दूसरी तरफ़ गूदड़ बस्ती है। यह संयोग ही है कि दोनों लेखिकाओं ने दो ऐसी आबादियों की चर्चा अपने उपन्यास में की है, जो अपने-अपने तरीके से संघर्षरत हैं। नाचने-गाने वालियों, तवायफ़ों से लेकर दलित और पिछड़े वर्ग का संघर्ष, इन दोनों उपन्यासों में स्थान पाता है। लेखक की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी भी यही होती है कि वह उनकी चर्चा करे, जिनकी चर्चा ज़रूरी होने के बाद भी कोई नहीं करता। लेखक उन सारे लाल कालीनों को उठा-उठा कर, उनके नीचे बिछे शोषण की पड़ताल करे, जो राजपथ पर बिछाए गए हैं। इसलिए सबसे पहले तो दोनों लेखिकाओं को बधाई देता हूँ कि उन्होंने अपने पहले उपन्यास में स्त्री लेखन के तय फ़ार्मेट (क्षमा सहित) को तोड़ते हुए अपने लिए मुश्किल रास्ते का चयन किया है। शोषित और उपेक्षित की कहानी कहना बहुत मुश्किल होता है। पिछले वर्ष चित्रा मुद्गल जी ने भी अपने उपन्यास 'नाला सोपारा' में एक ऐसे ही विषय को उठा कर एक अनूठी कृति को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया था।

अलग-अलग दोनों उपन्यासों के बारे में बात करने से पहले मैं थोड़ी-सी और एक साथ चर्चा करना चाहता हूँ। यह दोनों उपन्यास पूरी तरह से भारतीय उपन्यास हैं। इनके विषय भारत से ही उठते हैं और आम भारतीय पाठकों के लिए ही हैं। इनको समझने के लिए आपको किन्हीं संदर्भ ग्रंथों की, किन्हीं विवरणों की, किन्हीं अतिरिक्त पुस्तकों की आवश्यकता नहीं होगी। दोनों ही उपन्यास अपने संगठन में बहुत खुले हुए और सरल हैं। सरलता इन उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता है क्योंकि इन दिनों हिन्दी में सरल होना सबसे कठिन और कठिन होना सबसे सरल होता जा रहा है।

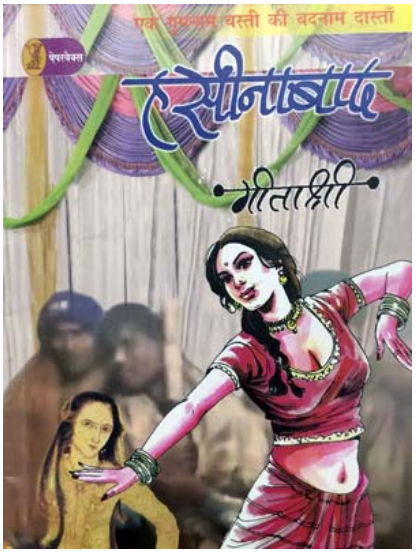

पहले बात करते हैं 'हसीनाबाद' की। यह कहानी गोलमी की कहानी है। लेकिन इस कहानी में वैशाली की नगरवधु आम्रपाली की गूँज सुनाई देती है। गोलमी का निर्माण वैशाली की मिट्टी से ही किया गया है। यह आम्रपाली का रीक्रिएशन है। उपन्यास में कई स्थानों पर इसके संकेत भी पाठक को मिलते हैं/दिए जाते हैं। 'हसीनाबाद' के आने के पूर्व से ही कई लोगों के मन में संशय था कि प्रखर युवा कहानीकार प्रभात रंजन की 'कोठागोई' से यह किस प्रकार अलग होगा। क्योंकि दोनों का उद्भव एक ही स्थान से हो रहा है और दोनों एक ही प्रकार की कहानी कह रहे हैं। 'कोठागोई' को लेकर मैंने विस्तार से कहीं लिखा था और वह पुस्तक मुझे बहुत अच्छी लगी थी। और अब मैं ही यह कहना चाहता हूँ कि 'हसीनाबाद' एक ही स्थान, एक ही विषय की कहानी होने के बाद भी 'कोठागोई' से बिल्कुल अलग है। शिल्प में भी, भाषा में भी और तकनीक में भी। 'कोठागोई संस्मरणात्मक कथा थी तो 'हसीनाबाद' एक मुकम्मल उपन्यास है। और हाँ यह भी कि -स्त्री की पीड़ा को स्त्री होकर ही बेहतर जाना जा सकता है।

'हसीनाबाद' उपन्यास का सबसे सशक्त पहलू है इस उपन्यास की पठनीयता, इसकी रोचकता। गोलमी की कहानी कभी भी, एक क्षण के लिए भी पाठक को अपने से दूर होने का अवसर नहीं देती है। उस पर गीताश्री ने बहुत ही सुगठित और सुंदर भाषा का प्रयोग उपन्यास में किया है। कुछ छोटे-छोटे टुकड़े जो बीच-बीच में वाक्यों के आते हैं, वो मन मोह लेते हैं पाठक का। गीताश्री की कहानियों का मैं प्रशंसक हूँ, लेकिन इस उपन्यास की भाषा उन सारी कहानियों की तुलना में बहुत अधिक समृद्ध है। उपन्यास का शिल्प भी बहुत सुस्पष्ट है, कहीं कोई झोल-झाल नहीं है। सारी नक़्क़ाशियाँ, सारे बेलबूटे बिल्कुल साफ-साफ दिखाई देते हैं। बहुत सारे पात्रों को फैलाव है, लेकिन उन सारे पात्रों के बीच लेखक ने कुशलता के साथ कहानी का संतुलन साधा है। इस प्रकार कि वे जो कुछ बिन्दु, जहाँ पर पाठक को असहज होना था, वहाँ भी वह गोलमी की उँगली पकड़ कर वह निकल जाता है। चूँकि मैं चाहता हूँ कि आप उपन्यास को पढ़ें, इसलिए कहानी के बारे में विस्तार से कोई बात नहीं। अच्छा उपन्यास।

'गूदड़ बस्ती' एकदम अलग समय और स्थान की कहानी है। यह हमारे समय और समाज की तलछट में जमी हुई गंदगी की कहानी है। वह गंदगी जो हमारे दिमाग़ों में जाने कितनी सदियों से जमी है। प्रज्ञा ने उस कहानी को कुछ अलग तरीक़े से देखने का प्रयास किया है। निम्नवर्गीय परिवार की कहानियाँ कभी भी पुरानी नहीं होतीं, उनमें हमेशा कुछ न कुछ नया मिल ही जाता है। क्योंकि समय उनको नए संत्रास, नई पीड़ाएँ, नए कष्ट देता ही रहता है। इस उपन्यास के लिए प्रज्ञा को प्रतिष्ठित मीरा सम्मान प्राप्त हुआ है। सही चयन है निर्णायकों का।

यह कहानी मीनू की है जो सुरेंद्र की ज़ुबानी पाठकों तक पहुँचाई गई है। बहन की कहानी भाई की ज़ुबानी। एक ऐसे परिवार की कहानी, जिसके संघर्षों का कोई अंत ही होता दिखाई नहीं देता। जिस परिवार का एक-एक सदस्य संघर्ष में है। मीनू का संघर्ष अधिक कड़ा और बड़ा इसलिए है क्योंकि वह लड़की है। उसके हिस्से में सूरज कुछ अधिक तीखी धूप लेकर निकलता है। हालाँकि पूरे परिवार की ही स्थिति वही है। प्रज्ञा की सबसे बड़ी सफलता इस उपन्यास में यह है कि उपन्यास के पात्रों के अंदर की छटपटाहट, उनके अंदर की बेचैनी पाठक को अपने अंदर महसूस होने लगती है। उस घर के अंदर जो भयावह, काली तथा स्थगित सी रात है, उस रात का सन्नाटा पाठक को अपने आस-पास ही महसूस होता है। ऐसा लगता है जैसे

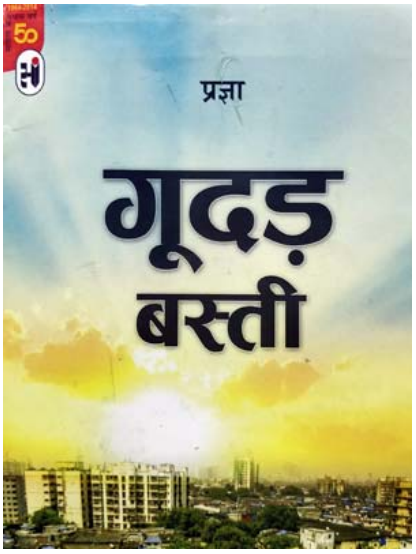

पाठक स्वयं उस घर का एक सदस्य हो गया है। जब पाठक किसी कृति को पढ़ते समय उसके पात्रों की तरह बेचैन हो जाए, तो लेखक का उद्देश्य पूरा हो जाता है।

उपन्यास की भाषा अपनी कहानी का बहुत ठीक प्रकार से प्रतिनिधित्व करती है। मेड फार ईच अदर। इस प्रकार के उपन्यास में जैसी भाषा होनी चाहिए, वैसी ही भाषा। वही भाषा जो उन पात्रों की होनी चाहिए। इस उपन्यास की एक और विशेषता यह भी है कि पूरी संभावना तथा गुंजाइश होने के बाद भी लेखक स्वयं अपने विचार पाठकों पर थोपने उपस्थित नहीं होता है। जो कुछ सामान्य रूप से पात्र कहते हैं बस वही पाठक तक पहुँचता है। प्रज्ञा ने सुरेंद्र के शरीर में अपना परकाया प्रवेश करने की उस बड़ी भूल से अपने आप को बचा लिया, जो भूल अमूमन बड़े लेखक भी इस प्रकार के कथानक में कर जाते हैं। अपनी बौद्धिकता झाड़ने का मोह यह भूल करवा देता है कि देखिए मुझे कितना कुछ पता है। लेकिन पाठक वह पब्लिक होती है, जो सब जानती है। कसे हुए शिल्प और सधी हुई भाषा के साथ प्रज्ञा ने भविष्य के संकेत अभी से दे दिए हैं। गूदड़ बस्ती उपन्यास नहीं एक यात्रा है। निम्नवर्गीय परिवार की संत्रास यात्रा...।

यह दोनों उपन्यास मैंने एक ही रात में एक साथ पढ़े और लगा कि आपको कहूँ कि आप भी पढ़ें। पढ़ें और ज़रूर पढ़ें...।

❐❐❐

पंकज सुबीर, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

समीक्षा

चोपड़े की चुड़ैलें : मनुष्यता और समाज की अनेक छवियाँ

उर्मिला शिरीष

समकालीन कथा साहित्य का सबसे सशक्त, विश्वसनीय और लोकप्रिय कथाकार पंकज सुबीर का नवीनतम कथा संग्रह 'चोपड़े की चुड़ैलें' चर्चा में है। चर्चा में इसलिए नहीं है कि इसका शीर्षक कुछ अलग है, भयावह है, रोचक है; बल्कि इसलिए है कि पंकज सुबीर की कहानियाँ अपने कथ्य, शिल्प, भाषा और कलात्मकता के कारण व्यापक रूप से सराही और पढ़ी गई हैं। समाज जो हमें दिखाई देता है, उसके भीतर का समाज और जो हमारी निगाहों से दूर जीता-जागता समाज भी है, जिसकी जिंदगी हमें आश्चर्य में डाल कर आलोड़ित कर देती है। यथार्थ कह भर देने से यथार्थ नहीं हो जाता, जो उस यथार्थ में जीते हैं, जिनके जीवन का हिस्सा वो यथार्थ है, जो हमारी सोच और कल्पना को भी चकित कर देता है, ऐसा यथार्थ पंकज की कहानियों को अलग और अनूठा बनाता है। यह सभी कहानियाँ 'जनाब सलीम लँगड़े और श्रीमती शीला देवी की जवानी', 'अप्रैल की एक उदास रात', 'सुबह अब होती है, अब होती है, अब होती है', 'चोपड़े की चुड़ैलें', 'रेपिश्क', धकीकभोमेग', 'औरतों की दुनिया' और 'चाबी' पाठक के दिल, दिमाग़ पर चमक पैदा करके सवालों की बौछार कर देती हैं।

पहली कहानी 'जनाब सलीम लँगड़े और श्रीमती शीला देवी की जवानी' एक ऐसे समाज में स्त्रियों की स्थिति का बयान करती है, जहाँ स्त्री का सौदा कोई और नहीं लड़की का पिता करता है। पंकज इस कहानी को लिखने के पहले उसकी पृष्ठभूमि भी बताते हैं। लड़की का पिता लड़के वालों से दहेज लेता है, इसलिए इस समाज में लड़की बोझ नहीं मानी जाती है; बल्कि लड़की के जन्म पर इस समाज के लोग खुशियाँ मनाते हैं। इस अंचल में कुँवारे लड़के, आदिवासी लड़कियों की ख़रीद-फरोख़्त करके अपना जीवन जीते हैं।

पंकज कहानी में इस समाज की दूसरी प्रथा के बारे में बताते हैं। शादी के बाद भी पिता अपनी लड़की लेकर तथा पैसे वापस देकर दूसरे पक्ष से पैसा लेकर उसको लड़की को दे देता है। 'नातरा' नाम की इस प्रथा में यह आम बात होती है, लेकिन सामान्य भाषा में इसे 'बेटी बेचना' भी कह सकते हैं। यह समाज का वह यथार्थ है जहाँ लड़की किसी वस्तु की तरह बेची, खरीदी जाती है। कहा तो यह जाता है कि यदि किसी जानवर के साथ भी रह लो, तो उससे भी लगाव हो जाता है, मोह हो जाता है, लेकिन जाने क्या था इन जातियों की स्त्रियों में कि उनको मोह व्यापता ही नहीं था। ''एक और अलग बात इन जातियों में थी कि इनमें देह के प्रश्नों को लेकर कोई बहुत ज़्यादा वर्जना, नैतिकता के सवाल आदि खड़े नहीं होते थे।''

लेकिन मनुष्य का अपना स्वार्थ सबसे बड़ा होता है। शीला देवी का विवाह जल्द हो गया था लेकिन माँ की मृत्यु के बाद मायके में एक स्त्री की ज़रूरत महसूस होने लगती है। भाइयों की शादी के लिए पिता के पास दहेज नहीं होता है, तब तय किया जाता है कि शीला देवी के पति को छोड़ देंगे और उसका नातरा करवा दिया जाएगा। जवान, खूबसूरत शीला देवी पति को छोड़कर मायके आ जाती हैं। भाइयों का संबंध तय हो जाता है। कुछ महीनों बाद ही भाइयों की शादियाँ हो जाएँगी और शीला देवी का नातरा, लेकिन इस बीच शीला का संबंध सलीम लँगड़े से हो जाता है। दोनों के बीच के संबंधों की चर्चा गाँव में होने लगती है। संबंधों से भी ज़्यादा लोगों को सलीम के नाम और जाति से एतराज़ होता है। और इसी बात को लेकर गाँव के लोग शीला देवी के भाइयों के कान भर देते हैं। एक रात जब सलीम शीला देवी से मिल कर लौट रहा होता है, तब चोर-चोर का शोर मचाकर उसे मार दिया जाता है। कहानी में स्त्री-पुरुष के संबंधों से ज़्यादा जो बात लोगों को खटकती है, वह है 'सलीम के साथ संबंधों की'। कहानी का अंत रोष छोड़ देता है और छोड़ देता है ऐसे सवाल, जो स्त्री-पुरुष की कामनाओं से बढ़कर जातियता की मानसिकता को ज़्यादा महत्त्व देता है। कहानी में सलीम और शीला दोनों के संबंधों के बीच की अंतरंगता को बहुत खूबसूरत भाषा से चित्रित किया गया है।

'चौपड़े की चुड़ैलें' कहानी को पंकज जिस तरह से लिखते हैं, वह अद्‌भुत है, जैसे कोई सामने बैठा व्यक्ति क़िस्सा सुना रहा हो। क़िस्सा सुनने की जिज्ञासा लगातार बनी रहती है। इसी तरह इस कहानी में साँस थाम कर पाठकों को आगे की कहानी पता चलती है। इस कहानी के लिए पंकज को हंस पत्रिका द्वारा 'राजेंद्र यादव हंस कथा सम्मान' भी प्रदान किया गया था। इस सूचना के साथ इस कहानी को लेकर पाठकों की उम्मीद भी बढ़ जाती हैं। कहानी चौपड़े से, हवेली से, शुरू होती है कि कैसे चौपड़े में तीन लड़कियों की स्नान करने से मौत हो गई थी। लेकिन धीरे-धीरे कहानियों का सच उजागर होता है और चौपड़े पर जो कुछ भी चलता है, वह एक नई तस्वीर लेकर आता है। देह व्यापार, क़स्बे और वहाँ के लोगों का आना-जाना, लड़कों की उत्सुकता और फिर लड़कों का शामिल होना। बात यहीं तक नहीं थमती है, बात आती है आधुनिक होते तकनीकी समाज में फैलती एक प्रवृत्ति की, जहाँ मोबाइल पर मीठी बातों का खुलेआम व्यापार चल रहा है। चुड़ैलों का बाक़ायदा नेटवर्क चलता है। इनके पैसों की ज़रूरत पूरी करने के लिए इन्हें शर्तों में बाँधकर प्रशिक्षित किया जाता है, और उसी के हिसाब से इन्हें पेमेंट भी किया जाता है। क़स्बे और गाँव के लड़के-लड़कियों

के लिए यह संसार ज़्यादा आकर्षक लगता है। सोनू भी इसी तरह का लड़का है, जो इस तकनीकी तंत्रजाल में फँस जाता है, लेकिन अंत में इन सबको इन मीठी बातों में मज़ा आने लगता है। ''चुड़ैलों को समझ में आ गया था कि केवल बातें ही तो करना है, वह भी उसके साथ, जो उनको जानता तक नहीं है। किसी अज्ञात के साथ केवल बातें करने में क्या बुरा है, यह बह्म ज्ञान प्राप्त होते ही चुड़ैलों के दिव्य नेत्र भी खुल गए थे।'' मानसिक व्याभिचार कहा जाए या अति आधुनिक जीवन में मानसिक खेल का एक सच, जहाँ खेलना मनोरंजन करना नहीं है बल्कि; अतृप्त मनोकामनाओं की क्षतिपूर्ति करना भी है। कॉल सेंटर में चलने वाला यह व्यवसाय नैतिकताओं की बहस को जन्म देता है।

एक और नया रूप हवेली की जगह वातानुकूलित हॉल बना दिए जाने गए हैं। ''चुड़ैलें अब हवेली से निकलकर वर्चुअल हो गई हैं, हवा में फैल गई हैं, सिग्नल्स के रूप में। अब वे हर किसी के मोबाइल में हैं। मीठी बातें करती हुईं, कुछ लाइव ध्वनियाँ पैदा करती हुईं। चुड़ैलें अब रूप बदल-बदल कर आ रही हैं, अब वे चौपड़े की चुड़ैलें नहीं रहीं, अब वे ब्रह्मांड की चुड़ैलें हो गई हैं। पूरे के पूरे वर्चुअल ब्रह्मांड की चुड़ैलें।'' यह कहानी आधुनिकता, आधुनिक तकनीक के जरिए चलने वाले खेलों, ख़ासकर स्त्री-पुरुष के बीच के खेलों को बहुत ही बारीकी से बुनती है। पंकज की दृष्टि एक ऐसे कथाकार की दृष्टि है, जो बदलते हुए समय, समाज, मनोविज्ञान, इच्छाओं, आकांक्षाओं, ज़रूरतों, के बीच मानवीय सरोकारों को बारीकी से देखती है परखती है और नए संदर्भों में आख्यायित करती है। स्त्री विमर्श की तमाम धारणाओं से परे यह कहानी उपभोक्तावादी संस्कृति के बीच स्त्री के 'वस्तु' हो जाने की कहानी है। यांत्रिकता से चलती इन स्त्रियों को चुड़ैल कहकर पंकज एक ऐसा रुपक गढ़ते हैं, जो इस स्त्री के बाह्य और भीतरी स्वरूप की पारदर्शी तस्वीर प्रस्तुत करता है। इधर लिखी जा रही कहानियों में यह कहानी अपने आप में अद्भुत कहानी है।

पंकज की एक और कहानी चाबी स्तब्ध कर देती है। जीवन में कभी-कभी ऐसी

घटनाएँ घट जाती हैं, जो अविस्मरणीय होती हैं और उन पर विश्वास न करने की अवस्था भी कम यातनाप्रद नहीं होती है। सुधाकर राव ऐसे ही व्यक्ति हैं, जिनके बारे में रश्मी को तमाम तरह के संदेह होते हैं। वह बार-बार आते फ़ोनों से परेशान हो उठती है। और अपनी भाभी सीमा को देखकर खिन्न भी कि वह क्यों अपने पड़ोसी की हर बात मानने को विवश है। क्यों मना नहीं कर देती है। लेकिन जब उसे पता चलता है कि उनके बच्चों की एक ऑटो एक्सीडेंट में मृत्यु हो गई है, लेकिन वह अभी भी यही मानकर चलते हैं कि बच्चे आएँगे चाबी लेंगे। उनके आने-जाने, खाने-पीने की चिंता करते हुए वह सीमा को बार-बार फ़ोन करते हैं। यह कहानी भीतर तक हिला देती है। किसी व्यक्ति का एक स्थान पर, एक स्थिति में, एक कालखंड में ठहर जाना, जीवन कहा जाएगा, या जीवन का आभास मात्र? आज के समय में सीमा जैसी समझदार, संवेदनशील, धैर्यवान महिलाएँ लाखों में एकाध ही होती हैं, जो किसी व्यक्ति की तकलीफ़ को इतनी गंभीरता से समझ कर उसका साथ दे सकें। मानवीयता तथा करुणा का यह सच ही संबंधों की पवित्रता को बचाए रखे हुए है।

'अप्रैल की एक उदास रात' कहानी प्रेम, घृणा, प्रतिशोध और स्त्री के टूटे स्वाभिमान की कहानी कही जा सकती है। शहर की प्रतिष्ठित गायनोकोलॉजिस्ट जिसके व्यक्तित्व में एक और व्यक्तित्व छुपा है। जिसका जीवन एक असफल प्रेम के टूटने की कहानी में डूबा है। जो बाहर से सुखी और सफल दिखाई देती है, लेकिन अंदर से भरी हुई है प्रेम में मिली निराशा से, दुख से, प्रतिशोध से। प्रेम जितना गहरा होता है, उतना ही मन को यातना से भर देता है। प्रेम जितना पवित्र होता है, उतना ही हृदय को चीर भी देता है। अगर उसे छला जाए धोखा दिया जाए तो। डॉक्टर शुचि की कहानी किसी फ़िल्मी कहानी की तरह लगती है, मगर फ़िल्में भी तो जीवन से उठाई जाती हैं। डॉक्टर शुचि मेडिकल की पढ़ाई करते हुए अपने से एक बैच सीनियर डॉक्टर वसंत से (जो उसका दिया हुआ नाम है) प्रेम करने लगती है। यह उसके जीवन का सबसे ख़ूबसूरत समय होता है। लेकिन बसंत के सपने कहीं और उड़ान भरने लगते हैं। उसकी शादी सुधा से हो जाती है। शुचि इस बात को सहन नहीं कर पाती है और बसंत से एक शाम और एक रात माँगती है, जिसका परिणाम होता है उसका बेटा क्षितिज। अपने से उम्र में पच्चीस साल बड़े डॉक्टर डीडी से विवाह करके शुचि एक आत्मघाती कदम उठाती है। यह सच्चाई उन दोनों के अलावा किसी को पता नहीं चलती है। पल्लवी श्रुति की मित्र नंदा की बेटी उपन्यास के लिए उनकी कहानी रिकॉर्ड करते हुए इस सच्चाई को जानती है। डॉक्टर शुचि की कहानी पल्लवी को स्तब्ध कर देती है। लेकिन डॉक्टर शुचि का मानना है ''सारी कहानियाँ अपना अंत लेकर नहीं आती हैं नंदू, कुछ कहानियाँ अधूरी छूटने के लिए ही होती हैं, जिनका कोई अंत नहीं होता, कभी नहीं। वह अनंत तक, अनंत में भटकती हैं, अंत की तलाश में।'' यह एक लंबी कहानी है, जो उपन्यास भी बन सकती है। प्रेम और प्रेम में जीने वाली शुचि का जीवन एक ना ख़त्म होने वाली वेदना का प्रतिरूप बनकर रह जाता है। क्योंकि ईमानदारी से प्रेम संबंधों को जीने वाली शुचि प्रेम में मिले धोखे के बाद शायद इसी रूप में जीने का संबल पा सकती थी।

संग्रह की एक और कहानी 'औरतों की दुनिया' बहुत ही सुंदर और मार्मिक कहानी है। समाज में आमतौर पर माना जाता है कि औरत ही औरत की दुश्मन होती है, पर औरत ही घर तोड़ती है, यह एकमात्र सच नहीं है, इसका दूसरा पहलू भी है कि औरतें ही घर को जोड़ती हैं, संबंधों को बचाती हैं,

बनाती हैं और निभा कर ले जाती हैं। ज़मीन जायदाद को लेकर चलने वाले झगड़ों में बँटवारे की बातों को प्राय: बढ़ावा देकर उनमें घृणा का भाव भर दिया जाता है। रूपेश अपने पिता और चाचा के बीच हुए बँटवारे के ख़िलाफ़ कोर्ट में मुकदमा लड़ता है, माता-पिता तथा अपने परिवार के इस बाते के विरोध में होते हुए भी। रूपेश की माँ कहती है कि रूपेश चाचा के घर जाए, वहीं रुके। रूपेश माँ की बात मानता है और चाचा के घर जाता है। चाची तथा उनकी तीनों बेटियों के साथ वह धीरे-धीरे सरल होने लगता है। चाचा के आने पर चाची मुकदमा तथा मुकदमे के बाद की स्थितियों के बारे में अपना दु:ख तथा शिकायत व्यक्त करती हैं। बचपन का स्नेह, प्यार और लगाव रूपेश के भीतर बैठी ज़िद को पिघला देते हैं। वह चाची की गोद में सिर रखकर सिसकने लगता है। ''सैलाब, जिसमें बहती जा रही थीं सारी कचहरियाँ, सारे कोर्ट, सारी मुकदमे की फ़ाइलें, खसरा-खतौनी, नामांतरण के सारे दस्तावेज़, खेतों की मेड़ें, पटवारियों की कलमें, वकीलों के कोट, सब कुछ, सब कुछ, सब कुछ। सारी दुनिया की औरतें हाथों में फावड़े लिए उस खारे पानी के सैलाब को मोडती जा रही थीं, हर उस दिशा में, जहाँ कहीं नज़र आ रही थीं कचहरियाँ, कोर्ट, थाने। मोड़ रही थीं ताकि वह सब कुछ बह जाए, पूरी तरह से बह जाए, ताकि दुनिया हो सके सचमुच औरतों की दुनिया।''

पंकज सुबीर के पास कहानी कहने की अपनी एक विशिष्ट शैली है, भाषा है, जीवन और जीवनानुभवों को पकड़ने की मनोवैज्ञानिक दृष्टि है। वह फार्मूलाबद्ध कहानियाँ नहीं लिखते हैं, बल्कि अपने समय की फार्मूलेबाज़ी और उसके आसपास रचे-बसे, अनदेखे पक्षों की गहरी पड़ताल करते हैं। उनकी कहानियों का विशाल संसार एक ऐसी दुनिया में ले जाता है, जहाँ मनुष्यता और समाज की अनेक छवियाँ देखने को मिलती हैं। इस नए कहानी संग्रह हेतु मेरी पंकज को शुभकामनाएँ।

❑❑❑

115/12, शिवाजी नगर, भोपाल
मध्यप्रदेश 462016
मोबाइल: 9303132118

पुस्तक चर्चा

सच कुछ और था

अशोक अंजुम

पुस्तक: कहानी संग्रह
लेखक: सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक: शिवना प्रकाशन

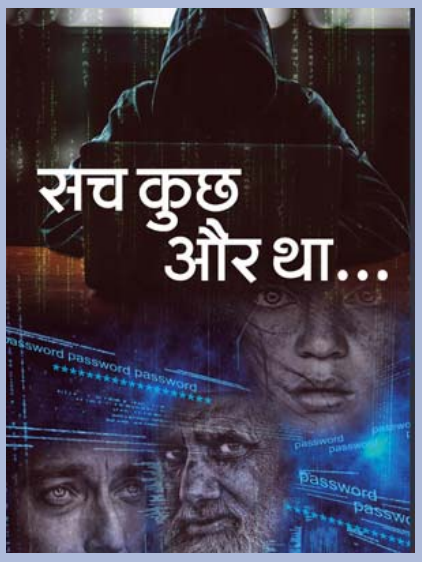

यू.एस.ए. में रहकर साहित्य की खूब सेवा करने वाली सुपरिचित कवयित्री / कथाकार सुधा ओम ढींगरा की 11 बेहतरीन कहानियों का संग्रह है- 'सच कुछ और था...'। कहानियों का ताना-बाना भले ही विदेशी भूमि पर बुना गया हो लेकिन; इनमें भरपूर भारतीयता है; और सुधाजी का कहानी कहने का अंदाज़ अंत तक जिज्ञासा बनाए रखता है। संग्रह की पहली कहानी में मनप्रीत की किंकर्तव्यविमूढ़ता और अंत में ज़मीर की आवाज़ पर सच का साथ देना रुचता है। दूसरी कहानी 'उसकी ख़ुशबू' में लेखिका ने जूली के चरित्र को जिस प्रकार अंत में प्रस्तुत किया है, वह चौंकाता है। शीर्षक कहानी 'सच कुछ और था' में महेन्द्र की कुण्ठाओं और दोहरे चरित्र का कच्चा-चिट्ठा ख़ूबसूरती से पिरोया गया है। 'पासवर्ड' में तन्वी का पासा उल्टा पड़ना पाठकीय मन को गहरी संतुष्टि देता है। 'तलाश जारी है' ऐसे लोगों की कहानी है, जो देश हो या विदेश, कहीं भी अपनी हरक़तों से बाज़ नहीं आते। 'विकल्प' नैतिक और अनैतिक के द्वंद्व से जूझती कहानी है, जिसे लेखिका ने बड़ी सावधानी से अंत तक पहुँचाया है। 'विषबीज' बलात्कार जैसे घिनौने कृत्य के विरुद्ध आह्वान करती विचारोत्तेजक कहानी है। 'काश ऐसा होता' पितृसत्ता से उत्पन्न विसंगतियों को बयान करने के साथ-साथ, नई शुरूआत कहीं से, कभी भी की जा सकती है, के समर्थन में अपनी आवाज़ बुलन्द करती कहानी है। 'क्यों ब्याही परदेस' पत्र-शैली में लिखी कहानी है, जिसमें विदेश में ब्याही बेटी द्वारा वहाँ के वातावरण से सामंजस्य न बैठा पाने की पीड़ा है। 'और आँसू टपकते रहे' में कोमल का अंतर्द्वंद्व और एक ऐसी युवती की व्यथा कथा है जिसे हालात ने मृत्यु के द्वार तक पहुँचा दिया। पुस्तक की अंतिम कहानी नारी स्वाभिमान और सशक्तिकरण की मार्मिक दास्ताँ है। कहानियाँ इतनी रोचक और पठनीयता से भरपूर हैं कि मुझ जैसे गद्य से कतराने वाले पाठक को भी किताब पूरी पढ़नी ही पढ़ती है।

❑❑❑

सम्पादक : 'अभिनव प्रयास', स्ट्रीट-2, चन्द्रविहार कॉलोनी, नगला डालचंद
क्वार्सी बायपास, अलीगढ़-202001, मोबाइल 09258779744

समीक्षा

बंद मुट्ठी : मन की शक्ति से हाथ की लकीरों को गढ़ता उपन्यास

मुकेश दुबे

पुस्तक: बंद मुट्ठी (उपन्यास)
लेखक: डॉ. हंसा दीप
प्रकाशक: शिवना प्रकाशन

आम भारतीय मन की गहराई में समाई है यह बात कि इंसान का भाग्य जन्म के पहले ही उसके हाथों की लकीरों में उकेर दिया जाता है। हो सकता है यह बात सच हो मगर जरुरी नहीं सभी के लिए, कुछ लोग इस मिथ को झुठला देते हैं। 'बोर्न टू ब्रेक रूल्स' कुछ लोगों के लिए कितना सटीक है जुमला! शायद तान्या भी उन्हीं लोगों में से एक है।

माफ़ कीजिए, तान्या इस उपन्यास की केन्द्रीय भूमिका में एक लड़की है जिसकी बात की जा रही है यहाँ। डॉ. हंसा दीप का प्रथम प्रयास इस विधा में। शीर्षक ''बंद मुट्ठी'', आवरण पर एक नन्हीं-सी मुट्ठी का प्रतिरक्षण करते दो हाथ इशारा करते लगते हैं इस कहानी के मूल भाव को मगर यह बात मालूम होती है पूरे उपन्यास से गुज़र जाने के बाद।

लेखन एक तरह की काश्तकारी है, मन की मृदा में भावों को बीजना, शिद्दत से देखभाल करना हर अंकुरण की और सींचना होता है संवेदनाओं का जल, तब पकती है किसी रचना की फ़सल। खेत में पौध उगाने के कई तरीके हैं, बिखरा दिया जाए बीजों को या करीने से रोपा जाए हर पौधा, यह निर्भर है किसान की रुचि और सोच पर। एक सफ़ल किसान जानता है यदि सीड-बेड पर बीजों का अंकुरण करवा कर रोप तैयार कर ली जाए तब, हर पौधे की दूरी निश्चित होगी, हवा और प्रकाश के लिए संघर्ष नहीं होगा, सहजता से पल्लवित, पुष्पित होगा प्रत्येक पौधा। यही बात लेखन में और उपन्यास लेखन में भी लागू है। भावों का पूर्व निर्धारण कर उन्हें दृश्य के मुताबिक पिरोया जाता है तब कहन का अंदाज़ निखर जाता है। पाठक के मन में हर बात सहजता से समाती जाती है। स्पष्टता के साथ आगे बढ़ती है कथा, जिज्ञासा अंत तक बनी रहती है तथा पाठक चलता जाता है लेखक के साथ। सफ़र कितना भी लम्बा हो, ऊब या थकन महसूस नहीं होती, हंसा दीप जानती हैं भलीभाँति यह बात।

शुरूआत में जिस ऊहापोह और बेचैनी को दिखाया गया है, रात युग-सी लम्बी लगने लगी वाकई में। माता-पिता का अपनी दत्तक पुत्री से सच कहने का द्वंद्व जिस खूबसूरती से रचा है, उतनी ही सुघड़ता से निभाया है लेखिका ने। कथा को आगे बढ़ाने में छोटे-छोटे दृश्यों को इस तरह से जोड़ा है मानो किसी हुनरमंद दर्ज़ी ने रुमालों को सी कर चुनरी बना दी और जोड़ों का एहसास भी नहीं होने दिया छूकर देखने पर।

एक युवा होती बच्ची की माँ लौट गई अपने बचपन में और अपने साथ जीने को मजबूर करवा दिया पाठक को। माँ, पिता और बड़ी बहन के लाड़-दुलार में नाजों पली जूही की कली-सा पेश किया है यहाँ तान्या को लेखिका नें। दरअसल आगे जिस ज़मीन पर चलवाना था कोमल पैरों को वहाँ सख्त फ़र्श की जगह मखमली कालीन दिखाया है हंसा दीप ने, यह प्रयोग सफ़ल भी रहा आगे तान्या के संघर्ष को समझने में। दो विरोधाभासी परिस्थितियों को दिखाने के पीछे शायद मंशा थी, पाठकों को चौंकाने की जिसमें पूरी तरह खरी उतरी हैं वो। जिस बच्ची की आवाज़ पर हर सुख सुलभ था उसने हर तकलीफ़ को जिस तरह पार किया, शब्दों से चित्रित करना आसान नहीं था लेकिन, लेखिका को महारथ हासिल है अन्तर्द्वंद्व की प्रस्तुति में।

स्कूल के बाद की पढ़ाई के लिए जब तान्या सिंगापुर से टोरंटो गई थी, उसका बचपना बरकरार था, नए परिवेश में अनजान लोगों के साथ धीरे-धीरे घुलना मिलना और वय: संधि पर होने वाले बदलाव को भी बतलाना नहीं भूली हैं हंसा दीप। चार हम उम्र युवतियों के मनोविज्ञान को भी चतुराई से लिखा है और यहीं से नींव डली तान्या के बदलाव की। घर और घरवालों के सम्मोहन से निकल एक जवान लड़की के मन में किसी के लिए आकर्षण जागा, दोस्ती हुई एक विदेशी लड़के से।

साथ चलते हुए तान्या और सैम कब गिरफ्तार हो गए चाहत में, पता भी ना चला एक दूसरे को। यहीं से शुरू हुआ तान्या का संघर्ष। नहीं माना उसने हाथ की लकीरों में लिखे भाग्य को और अपनी ज़िंदगी को छिटकने ना दिया हाथों से। उसकी कोशिशों में कई बार वो हारती लगी लेकिन सैम ने हर बार प्यार से थाम लिया उसका

हाथ और अंत में जीता भी प्यार..... सफ़ल हो गया तान्या का संघर्ष। ऐसा सुखांत जो भिगा गया आँखें और छोड़ गया अनगिनत सवाल।

सोचने पर मजबूर कर दिया हंसा दीप ने कुछ बातों को। भारतीय पिता कितना भी आधुनिक सोच का हो लेकिन एक जगह वो सिर्फ़ बाप बनकर रह जाता है। उसके कहने से बेटी किसी अनजान को शामिल करले जीवन में तो बेटी संस्कारी, यदि बेटी अपने जाने-पहचाने दोस्त के साथ जीवन जीना चाहे तब वही रंगभेद, जाति और सामजिक दायरे दिखने लगते हैं पिता को। एक माँ भी नहीं समझती अपनी जाई के अंत:करण को और बेटी को मुज़रिम क़रार दिया जाकर सज़ा भी सुना दी जाती है। एक बार भी नहीं सोचते तब उस बेटी की कोमल भावनाओं के लिए.... उस दर्द को जिसे सीने में दबाए वो बेटी जी रही है आस लिए मिलने की। विदेश जाकर बेटी पढ़े, सफ़लता के शिखर को चूमे लेकिन किसी विदेशी से प्यार ना करे.... डिग्री में सम्मान और दामाद लाए तो अपमान।

सैम के माता-पिता और तान्या के मम्मी-डैडी के व्यवहार का अंतर सालता रहा मन को देर तक, हम स्वयं को संस्कारी मानते हैं लेकिन अपनी ही बनाई नीतियों के मापदण्ड पर, जिन्हें हम गोरे कहकर खुद को उनसे अच्छा कहते हैं कई बार उनका आचरण बहुत कुछ सिखा जाता है यदि सीखना चाहें..... झूठे दम्भ और मान्यताओं के लिए रिश्तों को मिटा देना कहाँ की समझदारी है ? क्या बेटी की ख़ुशी से बड़ा है पिता का स्वाभिमान..... और भी कई बातें हैं जो पूरक कथा के रूप में आती हैं लेकिन बहुत कुछ कह जाती हैं।

हर बात का ज़िक्र उपन्यास की रोचकता ना कम कर दे इस लिए मैं अपने शब्दों को विराम देता हूँ, बस इतना कहना चाहता हूँ इस उपन्यास को हर नए लेखक को पढ़ना चाहिए। दो वज़ह हैं, पहली इस उपन्यास की भाषा-शैली जो प्रतिमान है अच्छे लेखन का। उपन्यास की भाषा अपने साथ बहा ले जाती है -''जीवन के गणित में कितने सारे उन्नीस-बीस!

एक व्यक्ति के जीवन में कितनी उथल-पुथल!

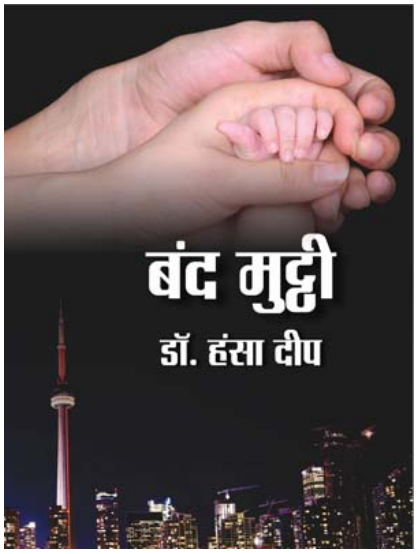

नि:संदेह किसी फ़िल्म का अच्छा-खासा मसाला था, तान्या का जीवन।

उधर रिया के लिए स्लाइड शो चल रहा था इधर तान्या के दिमाग़ में उसका अपना ही स्लाइड शो चल रहा था। सिर्फ तान्या ही क्यों, जस्सी के जीवन का उलटफेर उसे किसी कला फ़िल्म का धमाकेदार चरित्र बना देता है। एक ऐसी लड़की, जिसमें उत्साह और जोश कूट-कूट कर भरा था अपने पिता की मृत्यु के बाद उनका किरदार निभाने लगती है। अपने सारे सपनों को बीच में छोड़कर।

बीनू ओर मलिंगा की प्रेम कहानी का दर्दनाक अंत किसी ट्रेजेडी फ़िल्म का जीता-जागता उदाहरण है। अपने अहसास को समय पर व्यक्त न कर पाना, और जीवन भर तरसना-तड़पना, उन फ़िल्मों की कहानी में शुमार होता जिन्हें देखकर दर्शक रोते हुए घर जाते हैं। हाँ, जैसा चौकड़ी का अनुमान था, ठीक वैसे ही, शुचि की शादी बहुत धूमधाम से, उसके सपनों के राजकुमार से हुई। कोई रुकावट नहीं आयी शादी में। दोनों परिवारों ने ख़ुशी-ख़ुशी रिश्ते को स्वीकार कर लिया।''

दूसरी वज़ह भी ख़ास है, इसकी भूमिका में उपन्यास विधा की बारीकियों व आवश्यकताओं पर वरिष्ठ कथाकार-उपन्यासकार पंकज सुबीर ने जो टिप्स दी हैं वो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, दरिया को कूजे में उतार दिया है जैसे। वे लिखते हैं - ''उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें ज़रा-सी चूक की भी गुंजाइश नहीं होती है। यहाँ पर सब कुछ एकदम मुकम्मल होना चाहिए। उपन्यास विधा पाठक के लिए एक यात्रा होती है और इस यात्रा में रोचकता बनी रहे, यह लेखक की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी होती है। यह रोचकता साहित्य के संबंध में 'पठनीयता' होती है। किसी अन्य विधा में पठनीयता का इतना ज़्यादा महत्त्व नहीं होता है, जितना उपन्यास में होता है। असल में साहित्य की सबसे कठिन विधा उपन्यास ही होती है। कई बड़े लेखक ऐसे हैं हिन्दी साहित्य में जो अपना पूरा लेखकीय जीवन तय करने के बाद भी आज तक उपन्यास नहीं लिख पाए हैं। वे अभी तक बस कहानियों में ही उलझे हैं। नहीं लिख पाए हैं, तो उसके पीछे भी एक कारण है। कारण वही कि विषय को पूरे समय निर्वाह करना कैसे हो पाएगा। कई लेखकों ने ऐसे कई विषयों को बस कहानी बना कर ही छोड़ दिया, जिन पर अच्छा-ख़ासा उपन्यास बन सकता था। इसके उलट कई बार ऐसा भी हुआ है कि कहानी बन सकने लायक विषयों को कुछ लेखकों ने अपने हुनर से उपन्यास बना दिया। इस उपन्यास को जब मैंने पढ़ना शुरू किया, तो मन में कुछ दुविधा थी। यह दुविधा इस बात को लेकर थी कि उपन्यास शुरू तो कर लिया है, पता नहीं अंत तक पढ़ पाऊँगा भी या नहीं। मगर तीन देशों के बीच यात्रा की तरह चलता हुआ यह उपन्यास बाद का काम ख़ुद ही करवा लेता है। बाद का काम, मतलब पढ़वा लेने का।''

अपने पहले ही उपन्यास से सन्देश दिया है डॉ. हंसा दीप ने अपनी धमाकेदार आमद का साहित्य जगत में जिसके लिए वे बधाई की पात्र हैं। इस किताब को देखने के बाद लगता है की शिवना प्रकाशन नें हिंदी साहित्य की किताबों के कलेवर को अलंकारित करने का प्रण कर लिया है। शिवना पेपरबैक्स श्रृंखला में अब आ रही किताबें अपनी सजधज तथा गुणवत्ता में उत्कृष्टता का प्रतिमान बन गई हैं, यक़ीनन इस प्रयास के लिए टीम शिवना की भी प्रशंशा की जानी होगी, हार्दिक बधाई प्रकाशक व उनके सहयोगियों को।

❑❑❑

विजय विला, 107, डी. डी. एस्टेट
कॉलोनी, सीहोर (म. प्र.) 466001
मोबाइल : 9826243631
ई-मेल : dubeymukesh63@gmail.com

समीक्षा

बातों वाली गली : ज़मीन से जुड़ी कहानियों का संग्रह

राम रतन अवस्थी

पुस्तक: बातों वाली गली (कहानी संग्रह)
लेखक: वंदना अवस्थी दुबे
प्रकाशक: रूझान प्रकाशन

हिन्दी भाषा साहित्य में अन्यान्य विधाओं का उद्भव कभी भी हुआ हो, किन्तु जहाँ तक कहानी विधा का सम्बन्ध है, इसका उद्भव तो साहित्य के जन्म से भी पुराना है। कदाचित, मानव-प्रजाति के जन्म के साथ ही कहानी का अवतरण हुआ है। पृथ्वी पर पदार्पण करने वाला शिशु माँ की गोद से ही परिपुष्ट होकर जब बचपन की ओर अग्रसर होता है, तो माँ ही उसे लोक-प्रचलित छोटी-छोटी कहानियाँ सुनाकर जीवन-पथ पर चल पड़ने के लिए तैयार करती है। सभ्यता के विकास के इसी क्रम में कहानी भी क्रमश: अपना कलेवर बदलती रही है। इसका यह विकसित स्वरूप आज कहाँ खड़ा है- सभी को इसका परिज्ञान है। यह कहना असंगत न होगा कि साहित्य की सभी विधाओं में लोकप्रियता की दृष्टि से आज कहानी सर्वोच्च आसन पर आसीन है। कहानी की चर्चा के इसी तारतम्य में वंदना अवस्थी दुबे कृत ''बातों वाली गली'' की चर्चा भी समीचीन है।

वन्दना का सद्य:प्रकाशित उक्त कहानी संग्रह- 'बातों वाली गली' इस समय मेरे हाथों में है। पुस्तक के प्रथम अर्ध भाग पर अधुनातन शैली में सजा हुआ आकर्षक रंगीन चित्र है, तो शेष अर्ध भाग पर लेखिका के नाम सहित कहानी संग्रह का नाम-बातों वाली गली। सुधि पाठक भलीभाँति जानते हैं कि कृति का नामकरण कितना महत्त्वपूर्ण काम है। शीर्षक को कृति की आत्मा कहा गया है। वन्दना के कहानी संग्रह के शीर्षक को कुछ यों परिभाषित किया जा सकता है कि वह गली या स्थान जहाँ मोहल्ले की प्राय: प्रौढ़ महिलाएँ निरर्थक या अनर्थक बातें, यथा परनिंदा, चरित्र हनन, मनगढंत, सच्चे-झूठे किस्से और ईर्ष्या-द्वेष से पगी हुई कहानियाँ बड़े रसीले अन्दाज़ में पेश किया करती हैं। इस प्रकार गली के चरित्र को उजागर करता हुआ पुस्तक का यह शीर्षक वन्दना की परिपक्व दृष्टि और अधुनातन सोच को भी उजागर करता है। इस परिप्रेक्ष्य में पुस्तक का शीर्षक पूर्णत: उपयुक्त है।

साहित्यशास्त्रियों के अनुसार साहित्य की हर विधा के कुछ मूल तत्व होते हैं- सो कहानी के भी हैं- वे हैं :- शीर्षक, कथानक, संवाद, पात्र, चरित्र चित्रण, भाषा-शैली और उद्देश्य। एक अच्छे लेखक को अपनी रचना में इन्हें उपयुक्त स्थान देना चाहिए। किन्तु युग के प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं। आज का युग बंधनविहीनता को प्राथमिकता देता है, सो कलाकार या साहित्यकार भी अपनी रचनाओं की सृष्टि करते समय प्राय: सम्बद्ध विधा के तत्वों के समावेश का ख़याल नहीं करते, हाँ रचना में स्वत: उसका समावेश हो जाए, तो उसे ऐसा करने में कोई परहेज भी नहीं। जहाँ तक वन्दना का प्रश्न है- कहानी की रचना करते वक़्त भले ही उनकी दृष्टि उसके तत्वों की ओर न रही हो, किन्तु कोई भी विज्ञ पाठक उक्त तत्वों के समावेश को कहानियों में भली भाँति देख-पढ़ सकता है। मैंने वन्दना की सभी कहानियों को पूर्ण मनोयोग से पढ़ा है और पाया है कि प्राय: सभी कहानियों में उक्त तत्वों का सम्यकरूपेण समावेश हुआ है।

कहानियों का कथानक लम्बा और उबाऊ न हो, सम्वाद या कथोपकथन लम्बे-लम्बे न हों, पात्रों के चरित्र चित्रण हेतु लेखकदृष्टि सजग हो और उद्देश्य स्पष्ट हो। इस दृष्टि से वन्दना को आप पूर्ण सजग पाएँगे। उन्होंने उक्त परिप्रेक्ष्य में पाठकों को शिक़ायत करने का कोई भी अवसर प्रदान नहीं किया है।

कहानी संग्रह 'बातों वाली गली' में कुल बीस कहानियाँ संग्रहीत हैं। सर्वप्रथम कहानियों के कलेवर की बात की जाए तो आप पाएँगे कि वन्दना की बीस में से सत्रह कहानियों को तो लघुकाय कहानियों की संज्ञा दी जा सकती है। शेष अन्तिम तीन कहानियाँ ही ऐसी हैं जिन्हें दीर्घ कलेवर प्राप्त है। आज के युग की विशेषता है और आवश्यकता भी कि रचनाओं का कलेवर आकार-प्रकार की दृष्टि से छोटा होना चाहिए ताकि पाठक कम से कम समय में अधिक से अधिक पढ़ सके। वन्दना ने समय की इस नब्ज़ को भली प्रकार पहचाना है; एतदर्थ ही उन्होंने लघु आकार की रचनाएँ लिखकर पाठक को कम से कम समय में अधिक से अधिक कहानियाँ पढ़ने का अवसर प्रदान किया है। पाठक-वर्ग ने इस हेतु लेखिका की सराहना भी की है। वन्दना की कहानियों की

लोकप्रियता का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है।

आइए, थोड़ी सी चर्चा अब कहानियों के कथानकों की :- वैसे तो कहानी संग्रह में बीस कहानियाँ और हर कहानी का अपना अलग अलग कथानक है किन्तु संग्रह के समग्र कथ्य पर विचार करने पर हमें विदित होता है कि वन्दना की समस्त कहानियाँ मध्यमवर्गीय भारतीय समाज की दशा और दिशा पर आधारित हैं। यद्यपि लेखक की हर कहानी कल्पना प्रसूत होती है जिनमें यथार्थ से परे जाकर लिखने की भी सम्भावना विद्यमान रहती है किन्तु इस संग्रह में लेखिका ने सम्भाव्य को स्वीकार करते हुए प्राय: प्रत्येक कहानी में यथार्थ का चित्रण किया है। परिणामस्वरूप, पाठक को पढ़ते समय संग्रह की कहानी स्वयं अपनी कहानी प्रतीत होती है। इस स्थिति में पाठक कहानी के पात्रों से तादात्म्यावस्था स्थापित करने में सफल होते हैं। काव्य की चरम रसानुभूति यही है और यही रचना की सफलता भी है। वन्दना अपनी कहानियों में यह रसाभास कराने में सफल हैं।

कहानी संग्रह का एक अन्य मुख्य बिन्दु है कथानक के लिए चयनित सामाजिक क्षेत्र। हमारे देश का समाज जीवन-यापन की दृष्टि से तीन स्तरों में विभाजित है- उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग। देश की अधिकाँश जनता मध्यम वर्गीय जीवन जीती है। इस वर्ग के लोगों का रहन-सहन प्राय: 'हाँ' और 'न' के द्वन्द से आवृत्त रहता है। ऐसे लोगों की आर्थिक स्थिति थीक नहीं होते हुए भी उनके दैनन्दिन जीवन की आवश्यकताओं की किसी प्रकार पूर्ति होती रहती है।

सुख-दुखमय जीवन-तराजू के ये दोनों पलड़े कभी ऊँचे और कभी नीचे आते-जाते रहते हैं। कहा जाता है-'साहित्य समाज का दर्पण होता है।' अर्थात कथित समाज की वास्तविक तस्वीर वहाँ के साहित्य में देखी जा सकती है। जहाँ तक वन्दना की कहानियों का प्रश्न है - वे मध्यम वर्ग की अपनी ही जैसी कहानियाँ हैं। चंद महिलाओं में ' देख न सकहिं पराई विभूति' का प्राकृतिक गुण होता है। वन्दना की लगभग आधी कहानियाँ इसी गुण से सम्पन्न महिलाओं का सूक्ष्म विश्लेषण

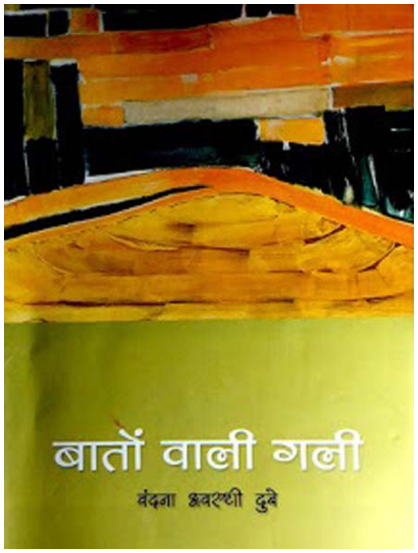

करतीं हैं। ऐसी महिलाओं की मानसिकता का उन्होंने जीवन्त चित्रण बड़ी स्वाभाविक शैली में किया है, उदाहरणार्थ- कहानी अलग-अलग दायरे, नीरा जाग गई है, अहसास, दस्तक के बाद, करत-करत अभ्यास के, बड़ी हो गई हैं ममता जी, और विरुद्ध आदि कहानियों को रखा जा सकता है।

कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें महिला समाज की जागरूक और साहसी महिलाओं का चित्रण है- ''प्रिया की डायरी'', ''बातों वाली गली'', ''नीरा जाग गई है'', और ''सब जानती है शैव्या'' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कहानियों में समाज के विविध रंग भी चित्रित किए हैं जैसे- ''नहीं चाहिए आदि को कुछ'' में बाल मनोविज्ञान का चित्रण है तो ''अनिश्चितता में'' दो भाइयों के जीवन स्तर की गाथा है। ''हवा उद्दंड है'' में वर्तमान युग की रुग्णता दर्शाई गई है तो ''बड़ी बाई साब'' में सामंती प्रवृत्ति का चित्रण। इन सबके विपरीत ''शिव बोल मेरी रसना घड़ी घड़ी'' एक ऐसी कहानी है जो आस्था और धर्म के नाम पर ढोंगी बाबाओं के कलुषित चरित्र को न केवल उजागर करती है, बल्कि ऐसे ढोंगी महात्माओं से दूर रहने, सावधान करती है। राम रहीमों के उदाहरण आज भरे समाज, यत्र तत्र अपने आसन जमाए हुए हैं।

जहाँ तक कहानी संग्रह की भाषा शैली का सवाल है, इसकी भाषा बड़ी सहज और स्वाभाविक है जो पाठक के मन-मस्तिष्क में आसानी से उतरती चली जाती है। शब्दों की दुरूहता से दूर , इसमें यत्र तत्र कुछ विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है, लेकिन ये केवल इसलिए कि लेखिका की भाषा, जन सामान्य की भाषा बन सके। कहानी की शैली तो चित्ताकर्षक है ही- इसे सुधि पाठक बंधु स्वयं महसूस करेंगे। कहानी के अन्य तत्व यथा सम्वाद और उद्देश्य भी यथानुरूप देखने को मिलते हैं। हर कहानी का जिज्ञासापूर्ण अन्त उसके उद्देश्य-पूर्ति की घोषणा स्वत: कर देती है। कुल मिला के उक्त कहानी संग्रह में प्राय: सभी तत्वों का सम्यक रूपेण समावेश हुआ है।

कहा जा सकता है कि ''बातों वाली गली'' आज के युग की दृष्टि से एक सफल कृति है जिसके लिए वन्दना साधुवाद की पात्र हैं।

प्रकाशन की दृष्टि से यह कहानी संग्रह ''बातों वाली गली'' वन्दना की यद्यपि पहली कृति है तथापि एक कथाकार और लेखिका के रूप में हिन्दी जगत् में उनका स्थान वर्षों पूर्व से सुरक्षित है। उनकी कहानियाँ और आलेख विगत अनेक वर्षों से देश की प्रसिद्ध हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। पत्रकार-जगत् में भी उनकी अच्छी ख़ासी पैठ है। देशबंधु के कार्यकाल में उन्होंने एक सक्षम पत्रकार के रूप में ख्याति अर्जित की है। समय-समय पर आयोजित होने वाली गोष्ठियों, सेमिनारों , साहित्यिक समारोहों में भी वे प्रतिष्ठित सहभागी के रूप में भाग लेती रही हैं। तमाम हस्तियों के साक्षात्कार भी उनके खाते में हैं।

वन्दना का यह प्रथम कहानी संग्रह ''बातों वाली गली'' अत्यल्प अवधि में ही बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुआ है सुधि पाठकों की समर्थ प्रतिक्रियाओं से यह भलीभाँति स्पष्ट है।

मुझे पूरा भरोसा है कि निकट भविष्य में यह संग्रह- ''गली-गली की बात'' बनने वाला है। ईश्वर करे, ऐसा ही हो। मेरी सद्भावना और आशीर्वाद।

❑❑❑

बंगला नंबर 2, करिअप्पा मार्ग
खड़की केंटोन्मेंट बोर्ड ऑफिस के पास
खड़की, पुणे 411003, महाराष्ट्र
मोबाइल 09179811306

समीक्षा

जोखिम भरा समय है : समकालीन युग-समाज की विसंगतियों का प्रतिबिम्ब

डॉ. ऋतु भनोट

पुस्तक: जोखिम भरा समय है (कविता संग्रह)
लेखक: माधव कौशिक
प्रकाशक: सामयिक प्रकाशन

यह कैसे युग में जी रहें हैं हम, किस प्रकार की मृत परम्पराओं का भार वहन करने के लिए शापित हैं? कैसा समय है कि धर्म, सम्प्रदाय, राजनीति, छोटे-छोटे निहित स्वार्थ इतने हावी हो गए हैं कि मनुष्य अपनी क्षुद्रताओं का दास बनकर रह गया है। आधुनिक मनुष्य वैमनस्य तथा विद्वेष का हलाहल न तो निगलने में सक्षम है और न ही नीलकंठ की भाँति उसे कंठ में धारण करने की उसमें सामर्थ्य है। इस जोखिम का साक्षात्कार करने के लिए हम सब न चाहते हुए भी विवश कर दिए गए हैं। हिंदी के प्रख्यात ग़ज़लकार तथा आलोचक श्री माधव कौशिक का नवगीत संग्रह 'जोखिम भरा समय है' युग-समाज की ऐसी ही विद्रूपताओं को अपनी तमाम भयावहता के साथ अभिव्यक्त करता है। उक्त संग्रह में भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप भौगोलिक दूरियों के सिमटने, व्यक्तिगत अंतराल के अलंघ्य होते जाने, स्मार्ट फ़ोन तक सीमित हो चुकी जीवन शैली, साधनों की भरमार के बावजूद मनुष्य के एकाकीपन जैसे ज्वलंत विषयों पर एक सौ एक नवगीत संकलित हैं। सर्वहारा, दमित वर्ग जिनकी ज़ुबान पर व्यवस्था ताले जड़ देती है, जिन्हें आवाज़ उठाने की कीमत प्राण देकर चुकानी पड़ती है, ऐसे बेज़ुबान शोषित जन के पक्ष में बोलने का दुस्साहस साहित्यकार ही कर सकता है। रचनाकार ही बेख़ौफ़ होकर सत्ता को ललकारते हुए वंचितों की कहानी अपने लहू से दर्ज करने का बूता रखता है।

घेरकर मारे गयों की चीख हूँ मैं,
भय से आतंकित नहीं निर्भीक हूँ मैं,
रक्त से लिखता रहूँगा....
हर कहानी।

धर्म जीवन जीने का मार्ग है। जब मनुष्य असमंजस की स्थिति में घिर कर कर्तव्य का निर्धारण नहीं कर पाता, जब अच्छे-बुरे विकल्प के बीच बुद्धि अर्जुन की भाँति संशयग्रस्त हो जाए तो धर्म ही अंतिम विकल्प बन कर राह दिखाता है। कैसी विडंबना है कि मनुष्य ने धर्म को सम्प्रदायों के नाम पर बाँट कर धर्मस्थानों की चौहद्दी तक ही सीमित कर दिया है। मंदिर हों या मस्जिद शैतानों का आश्रयस्थल बनते जा रहे हैं-

शत्रु नहीं सरहद पर उतने
जितने घर के अंदर,
शैतानों को आश्रय देते
मस्जिद हों या मंदिर।

रोटी की तलाश लोगों को गाँवों से शहर ले आई है। खेतिहर किसान शहरों में मज़दूरी करने को विवश हैं। गाँव भूख की चपेट में है और शहर दंगे की। देशभक्त दो जून रोटी को तरस रहे हैं और सत्ता के व्यापारी धन-धान्य के स्वामी बन कर दोनों हाथों से पैसा लुटा रहे हैं-

देशभक्त सब भूखे नंगे ,
शहरों में मज़हब के दंगे।

जीवन का गणित भी कितना उल्टा है ? मनुष्य आजीवन सुख खोजता है और सुख के ऐवज में कितने दु:ख बटोर लाता है। शांति पाना चाहता है लेकिन सारी कोशिशें उसे तनाव और अशांति की देहलीज तक छोड़ आती हैं। जहाँ भूख है वहाँ रोटी नहीं, जहाँ बिस्तर है वहाँ नींद नहीं और जहाँ सुविधाएँ हैं वहाँ सुख नहीं -

पैर मिले तो रस्ता गायब
राह मिली तो पाँव गए ,
अपने घर की इच्छा लेकर
जाने किसके गाँव गए।

मानचित्र पर महानगरों के रूप में अपने विशाल आकार के साथ शोभायमान बड़े- बड़े शहर संकुचित मानसिकता वालों के बसेरे हैं। शहरों की परिधि जितनी विशाल और क्षेत्रफल जितना अधिक है उसके बाशिंदों का मन उतना ही छोटा और ओछा है। वास्तविकता यह है कि ऊँची अट्टालिकाओं, चौंधियाती रोशनियों तथा दमकते, खिलखिलाते चेहरों के बावजूद-

छोटेपन का, ओछेपन का
कुंठित महानगर।
चौराहे पर ठिठका-ठिठका

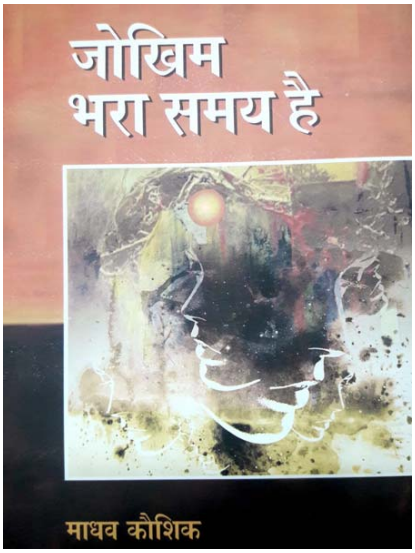

कभी न खुलकर रोया, सिसका,
पत्थर दिल पत्थर जैसा है
शापित महानगर।

उदारीकरण ने एक ऐसी बाज़ारवादी व्यवस्था को जन्म दिया है जिसकी चकाचौंध तथा लुभावने विज्ञापनों ने आधुनिक पीढ़ी को दिग्भ्रमित कर दिया है। आधुनिक कहलाने की होड़ में सब अपनी परम्पराओं और विरासत को भूल कर इस बाज़ारवाद के अंधे गर्त में समाते जा रहें हैं। कपड़े छोटे होते जा रहे हैं, ज़रूरतें बढ़ती जा रही हैं, लालसाएँ सुरसा के मुख की तरह सब लील जाने को आतुर हैं। कवि मन उदारीकरण के परिणाम देख कर विचलित है, उसका सरोकार, चिंता बन कर कविता के माध्यम से हमें चेतावनी दे रहा है:

कहीं उदारीकरण हमें नंगा न कर दे,
सुरती, जर्दा छोड़ चले
सब पिज्जा खाने,
बाँध बोरिया गाँव चला
हनीमून मनाने,
नई चाल की ढाल
कहीं पंगा न कर दे।

साहित्यकार अपने समय का चितेरा भी होता है और जागरूक प्रहरी भी। पिछले कुछ वक्त से स्मार्ट फ़ोन की आभासी दुनिया ने जिस प्रकार शनैः-शनैः लोगों को अपने मायावी पाश में जकड़ लिया है उसकी भयानक परिणति अब सामने आने लगी है। व्यक्तिगत धरातल पर सूखती संवेदनाएँ अब मोबाइल पर आत्मीयता खोज रही हैं, आभासी दुनिया के रिश्ते वास्तविक जीवन के रिश्तों पर हावी हो रहे हैं। ज़िंदगी रिंगटोन की समानार्थक हो चली है। आधुनिक जीवन के इस कटु सत्य को माधव कौशिक कुछ यूँ बयाँ करते हैं-

फिर बजी घंटी मोबाइल फ़ोन की,
....वर्जनाओं की चट्टानें
रेत बनकर ढह रही हैं,
और एसएमएस के जरिए
भावनाएँ बह रही हैं ,
ज़िंदगी पर्याय बन कर रह गई
रिंगटोन की।

एक ओर आधुनिकता के नाम पर हमने मोबाइल को ही अपनी दुनिया बना लिया है तो दूसरी ओर जल, जंगल, धरती, वायु सबका अतिरिक्त दोहन करके प्रकृति के संतुलन को हिलाकर रख दिया है। पशु-पक्षी विलुप्त होते जा रहे हैं, मौसम चक्र अव्यवस्थित हो गया है, कभी सूखा पड़ जाता है और कभी बाढ़ की स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। हालात इतने बदतर हो गए हैं कि सम्भावना जताई जा रही है-

अगला विश्वयुद्ध
कहते हैं,
जल की खातिर होगा।

जोखिम भरा समय है, में माधव कौशिक ने न तो कोई समाधान सुझाया है, न सांत्वना दी है और न ही झूठी आशावादिता का सपना दिखा कर वास्तविकता की भयावहता पर पर्दा डालने की कोशिश की है। स्थितियाँ सच में इतनी विस्फोटक हैं कि झूठ का कोई भी मुल्लमा सड़ी-गली व्यवस्था की सड़ांध को बाहर आने से रोक नहीं सकता। हम लाख झुठला लें, तरक्की के कसीदें पढ़ लें, उपलब्धियों के परचम फहरा दें परन्तु सच्चाई यही है कि समकालीन समाज पतन के गर्त में समा रहा है। प्रकृति कंगाल हो रही है, मनुष्य अपनी गरिमा खो चुका है, संबंधों पर अजनबियत हावी हो गई है क्योंकि हम जिस काल खंड में से गुज़र रहे है, यह बेहद खतरनाक, जोखिम से भरपूर और चुनौतीपूर्ण है। नवगीत विधा के माध्यम से सत्य की ऐसी बेलाग अभिव्यक्ति हिंदी साहित्य में दुर्लभ है।

❐❐❐

4486, दर्शन विहार, सेक्टर-68,
मोहाली-160062
मोबाइल: 9915224922

फार्म IV
समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।
पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी
1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।
4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।
5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।
4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।
मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।
दिनांक 20 मार्च 2017
हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

समीक्षा

आमूलचूल निरीक्षण करने वाली कहानियाँ

प्रतीक श्री अनुराग

पुस्तक: संतगिरी (कहानी संग्रह), लेखक: डॉ. मनोज मोक्षेंद्र
प्रकाशक: अनीता पब्लिशिंग हाउस

डॉ. मनोज मोक्षेंद्र का चौथा कहानी संग्रह 'संतगिरी' में तेरह कहानियाँ हैं, जो समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्य में लिखी गई हैं। संग्रह की पहली कहानी 'पुअर लेनिन, हिटलर को डिनर पर बुलाओ!' में मिसेज़ भंडारी के अनुचित रूप से परिवार के सदस्यों पर हावी रहने का दिलचस्प ब्योरा बड़े ही चुटीले अंदाज़ में प्रस्तुत करते हैं। मिसेज़ भंडारी के पति 'आरके' आधुनिक पत्नी-प्रलोभक पुरुष के भेष में हास्यास्पद व्यक्तित्व के रूप में मुखर होते नज़र आते हैं। अत्यधिक निरीह होकर पत्नी की ख़ुशामद करने की उनकी आदत आलोचनास्पद है। शायद, उनका यह स्वरूप मौज़ूदा विघटित हो चुके संयुक्त परिवार का एक दुष्परिणाम है। सवाल यह उठता है कि स्त्री-पुरुष को समान दर्ज़ा दिए जाने की व्यापक कवायद के फलस्वरूप उच्च मध्यम वर्ग के परिवार में स्त्री का वर्चस्व कहीं समाज को अनैतिक क्रिया-व्यापार के दलदल में तो नहीं ले जा रहा है। कहानी में फीमेल सेक्स व्यवहार को सिर्फ़ सुख और हास्य के प्रमुख स्रोत के रूप में उजागर किया गया है जिसे परोक्षत: कथाकार स्वीकार करना नहीं चाहता है। सबला औरत को पति, बेटे, बहू आदि सभी पर शासन करते हुए प्रदर्शित किया गया है क्योंकि ऐसा न तो पुरुष के लिए न ही स्त्री के लिए समर्थनीय है। स्त्री का मनोविज्ञान कुछ इस प्रकार है कि वह तभी संतुष्ट हो पाती है जबकि उसकी शासन करने की प्रवृत्ति को अबाध विस्तार मिलता है; तभी तो वह अपने पारिवारिक सदस्यों के नाम संसार के प्रमुख तानाशाह लेनिन और मुसोलिनी तथा ब्रिटेन की भूतपूर्व प्रीमियर मारग्रेट थैचर पर रखती है।

कहानीकार संग्रह की अगली कहानी 'रखैल मर्द' में भी, जैसाकि शीर्षक से ही स्पष्ट है, स्त्री-वर्चस्व को पुन: रेखांकित करता है। 'लिव इन रिलेशनशिप' के रूप में अनैतिक-असामाजिक रूप से फल-फूल रहे दांपत्य के सुपरिणामी न होने की तर्कपूर्ण व्याख्या इस कहानी में की गई है और इसका दु:खद हश्र भी बताया गया है। पति स्वस्थ दांपत्य जीवन व्यतीत करना चाहता है जबकि पत्नी को अविवाहित रहते हुए बाल-बच्चों समेत आजीवन उसके साथ रहने से कोई गुरेज़ नहीं है। बल्कि वह इस रूप में ही रहने की ज़िद पर अटल रहती है। संग्रह की एक और पारिवारिक कहानी 'ऐसी है जुगुनी' स्त्रियों के विभत्स कुकृत्यों की जमकर नंगाझोरी करती हैं। औरत के मायकेवालों का कहर इतना घातक होता है कि पति के पास मृत्यु को आलिंगन करने के सिवाय कोई और विकल्प नहीं रह जाता। पति के ख़िलाफ़ षड्यंत्र, जादू-टोने का प्रयोग, मायकेवालों की मिलीभगत, पति और दामाद का उत्पीड़न और वह भी दहेज लेने के कारण, ओझाओं और मौलवियों के कर्मकांड, मायकेवालों की निर्दयता के कारण दामाद के परिवार का घातक विघटन जैसे अनेक ज्वलंत पारिवारिक मुद्दों पर कथाकार चर्चा करता है। पूरी कहानी पढ़ने के बाद मन जुगुप्सा से भर जाता है और पाठक पारिवारिक बदहालियों पर बदलाव लाने के लिए उद्वेलित हो उठता है। बेशक, अगर समानतावादी लोकतंत्र बहाल करने की दुहाई समाज में की जाती है तो परिवार में क्यों नहीं?

'बात इतने से ख़त्म नहीं हुई' कहानी में स्त्रियों के ख़िलाफ़ पुरुष द्वारा अपनाए जाने वाले छल-प्रपंच और छद्म विवाहेतर संबंध को रूपायित किया गया है। कहानी की मुख्य पात्र श्यामल दीदी का विवाह गाँव के जिस बेरोज़गार युवक से होता है, वह रोज़गार ढूँढ़ने के बहाने शहर जाकर न केवल अपने प्रापर्टी डीलर मित्र के साथ काम करते हुए उसे धोखा देकर बेईमानी और गुंडागर्दी की नींव पर अपना नया भारी-भरकम बिज़नेस खड़ा करता है, बल्कि दूसरा विवाह भी करता है तथा अपनी पहली पत्नी श्यामल को इस भ्रमजाल में उलझाए रखता है कि वह अभी भी शहर में उसके लिए संघर्ष कर रहा है तथा जैसे ही वह वहाँ अपने रोज़गार का स्थाई बंदोबस्त कर लेगा, उसे शहर बुला लेगा। लेकिन यह तो उसका स्वाँगपूर्ण छद्म रूप था; भीतर से वह बेहद काइयाँ आदमी था। पहली पत्नी के बच्चे जिस अमानवीय हालात में अभाव और दरिद्रता की ज़िन्दगी गुजर-बसर करते हैं, वह सचमुच दिल को दहला देता है। श्यामल दीदी का मुँहबोला भाई जब शहर जाकर प्रापर्टी डीलर मित्र को आईना दिखाने की कोशिश करता है तो उसे

उसके गुंडे-मवालियों का सामना करना पड़ता है।

संग्रह की कहानी 'सियासतदारी में हमशक़्ल होने के मायने' में एक आम दलित व्यक्ति द्वारा राजनीतिक क्षितिज पर वर्चस्व हासिल किए जाने के बाद उसके सियासी हथकंडों पर चर्चा की गई है। कहानी में आद्योपांत जिज्ञासा हिलोरे लेती है। राजनीतिक कुचक्रों तथा राजनेताओं के चरित्र का ब्योरा जितने सलीके से दिया गया है, वह पाठकों को सियासी गलियारों के नए-नए अनुभवों से अवगत कराता है। शीर्षक से ऐसा लगता है कि यह कहानी तिलस्म से भरी होगी; पर, सारा ब्योरा वास्तविक जगत पर आधारित है। पिता और पुत्र ही हमशक़्ल होते हैं जिनके ख़ौफ़ से दलित बाहुबली नेता सत्यार्थी स्वामी हमेशा सहमा रहता है। सियासतदारी में जो नेता अपने बाहुबल का प्रदर्शन करने और तिकड़म के जरिए अपना स्वार्थ सिद्ध करने में अव्वल होता है, उसकी ही चाँदी होती है। लेकिन, कहानी का एक और पहलू है जिसमें डी आर मेहता सरीखा नेता राजनेताओं के पाखंड को तोड़ना चाहता है।

संग्रह की अन्य कहानियों में कहानी '़फ़्लैट कल्चर' आवासीय कालोनियों की सोसाइटियों के पदाधिकारियों में व्याप्त अवैध भ्रष्टाचरणों तथा किसी अपार्टमेंट में रहने वाले एक शरीफ़ परिवार के शोषण का विवरण देती है जबकि परिवार के मुखिया 'जैन साहब' को तिकड़मी कालोनीवासियों के हाथों शोषित होना पड़ता है तथा आख़िरकार उसे फ्लैट बेचकर कहीं और जाना पड़ता है। कहानी 'गोबरधन' एक बेरोज़गार युवक की ईमानदारी और घर के मालिक की फ़राखदिली को दिलचस्प ढंग से प्रस्तुत करती है जबकि मालकिन अपने स्त्री-सुलभ स्वभाव के कारण तब तक उस युवक पर संदेह करती है जब तक कि उसकी निष्ठा प्रमाणित नहीं हो जाती है। यह कहानी एक अच्छी सीख़ देकर जाती है। कहानी 'उगते हुए को यूँ सूरज बनाना' साहित्याकाश में वर्चस्व तथा लोकप्रियता हासिल करने के लिए कूपमंडूक लेखकों द्वारा अपनाए जाने वाले हथकंडों पर प्रकाश डालती है तथा गंभीर लेखकों के साहित्य से मोहभंग होने की प्रवृत्ति को विश्लेषित

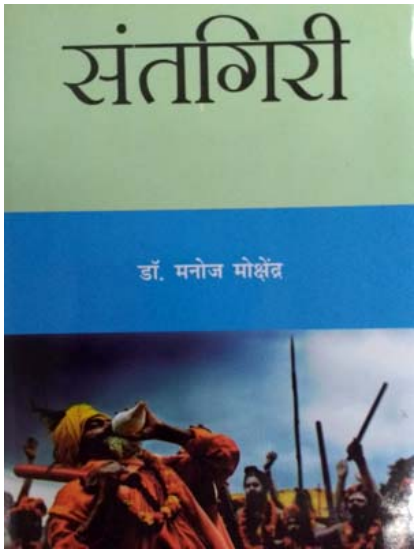

करती है।

'संतगिरी' धार्मिक मठों में व्याप्त भ्रष्टाचरणों को आड़े हाथों लेने वाली उल्लेखनीय कहानी है जिसमें संत समाज के वास्तविक रूप को प्रथमतः पाठकों के सामने रखा गया है। संत समाज में भोग-विलास और सुख-ऐश्वर्य के जो साधन उपलब्ध हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए कनिष्ठ श्रेणी के साधुओं में छिड़े जंगी जद्दोजहद को इस कहानी में वर्णित किया गया है। तदनंतर कहानी 'कुत्तागिरी' पश्चिम भारत के नव-धनाढ्य समाज के हीन भावना से ग्रस्त लोगों में अस्मिता की लड़ाई को चित्रित करती है जबकि भिन्न-भिन्न नस्लों के बेशकीमती कुत्ते पालने का शौक उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन जाता है। संग्रह की अन्य कहानियाँ भी कथाकार की चातुर्यपूर्ण कथानक की बुनावट तथा उसकी कहानी-कला पर विशेष प्रकाश डालती है। कहानी 'सठियाई उम्र का उन्माद' वृद्धों के समाज में भावी जीवन में सार्थक रूप से सक्रिय होने के लिए जो उपक्रम अपनाए जा रहे हैं, वे फ़िलहाल भले ही हमें आपत्तिजनक लग रहे हों; लेकिन ऐसा करना समय की माँग है क्योंकि वृद्ध माँ-बाप को वृद्धाश्रम में निपटाने की परंपरा अब ज़ोर पकड़ती जा रही है। ऐसे में, अपेक्षा की जाती है कि वृद्धजन आत्मनिर्भर बनें क्योंकि एक न एक दिन उनके बेटे उन्हें बेघर कर देंगे। कहानी 'तमाचा' भी एक-दूसरे का सहारा बनने के लिए वृद्धों और वृद्धाओं को वैवाहिक सूत्र में बंधकर नई स्वार्थी और निर्दई पीढ़ी को एक स्मरणीय सबक दे जाती है। मोक्षेंद्र की कैलिडोस्कोप की तरह दृष्टि है जो सभी दिशाओं में समाज के हर पहलू को भेदते हुए देखती है। उनका नज़रिया उन्हीं के शब्दों में देखिए, ''इस नए दौर में ख़ासतौर पर युवाओं में मनोविकृतियाँ एक ऐसे लाइलाज स्तर तक पहुँच गई हैं, जहाँ निरोग और स्वस्थ मानवीय व्यक्तित्व की बातें करना ही बेमानी हो जाता है। पाशविकता के लक्षणों वाली आधुनिकता के इस दौर में मनुष्य की हर गतिविधि और यहाँ तक कि जनांकिकीय महत्त्व वाले सेक्स-संबंध भी कितने यांत्रिक-से हो गए हैं--इसकी व्याख्या करने की ज़रूरत है ही नहीं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधन ही इस दौर के बच्चों के असली माँ-बाप और शिक्षक हैं जिनका अनुकरण वे आँख मूँदकर करते हैं। ये सर्व-सुलभ साधन जीवन के सबसे सड़ाँध देने वाली कचरी गलियों में उस अंधखोह तक ले जा रहे हैं जहाँ से उसे निकालना असंभव हो जाता है। सो, सुलझे लेखकों के लिए इस तरह की गतिविधियों से कुपोषित परिवार एक चुनौतीपूर्ण समस्या बन चुका है। सदस्यों की मनोग्रंथियाँ इतनी जटिल हो चुकी हैं कि उनकी ब्रेन-वॉशिंग करना अत्यंत दुष्कर-सा हो गया है।''

मोक्षेंद्र की कहानियाँ आम जनजीवन का आमूलचूल निरीक्षण करती हैं, विभिन्न स्तरों पर मानवीय संबंधों और रिश्तों का जायज़ा लेती हैं और सामाजिक संबंधों को सदाशयता से लबरेज देखना चाहती हैं। यदि 'सियासतदारी में हमशक़्ल होने के मायने' जैसी राजनीतिक मुद्दे पर लिखी गई कहानी है तो भाषा और पात्र भी उसी के अनुकूल हैं। '़फ़्लैट कल्चर' के पात्र भी आवासीय सोसाइटियों के भ्रष्ट पदाधिकारियों जैसा ही आचरण करते हैं और उनके द्वारा किए जाने वाले घात-प्रतिघात, ईर्ष्या-द्वेष, स्वार्थ-पूर्ति आदि जैसी अनर्गल गतिविधियों को पूरी तरह प्रतिबिंबित करते हैं। 'सठियाई उम्र का उन्माद' और 'तमाचा' में वे न केवल उपेक्षित बुज़ुर्ग के आक्रोश को सार्वजनिक करना चाहते हैं अपितु जेनेरेशन गैप की धारणा को भी एक सिरे से खारिज़ करते हुए इस लोकप्रिय भ्रांति को मिटाना चाहते हैं।

❐❐❐

प्रधान संपादक 'वी विटनेस' गिरि नगर, वाराणसी (उ. प्र.)

शिवना प्रकाशन : जनवरी 2018 सेट में शामिल पुस्तकें

प्रगति मैदान पर आयोजित होने वाले नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2018 में "शिवना प्रकाशन-ढींगरा फ़ाउण्डेशन" का स्टॉल हॉल क्रमांक 12 ए / 12 में स्टॉल क्रमांक 105 है। कृपया अवश्य पधारें।

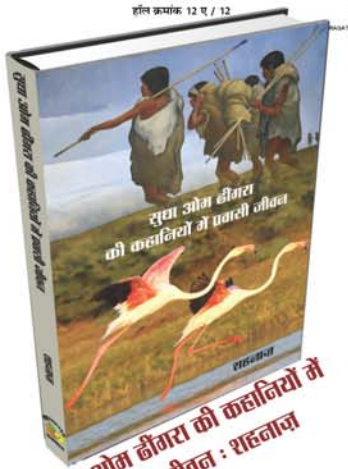

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में प्रवासी जीवन : शहनाज़

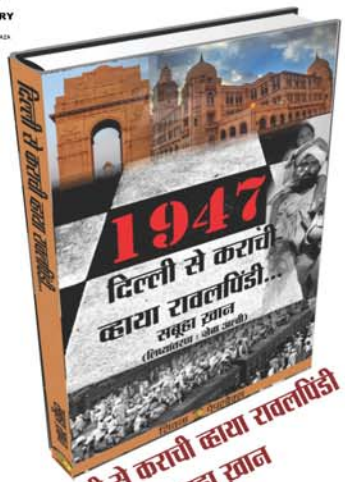

दिल्ली से कराची काया रावलपिंडी सबूहा ख़ान

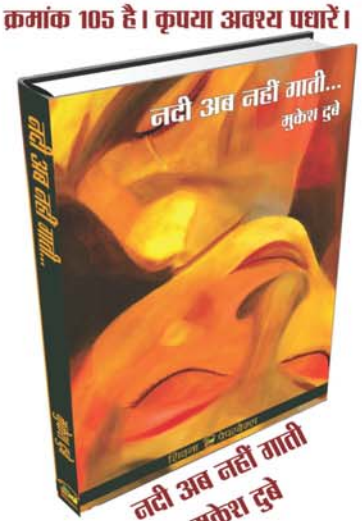

नदी अब नहीं माती मुकेश दुबे

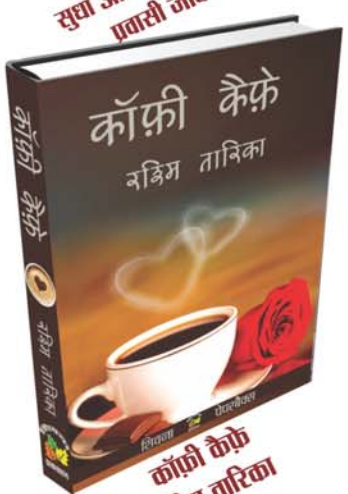

कॉफ़ी कैफ़े रश्मि तारिका

प्रवासी भारतीय की समस्याएँ एवं संवेदनाएँ : प्रसीता पी

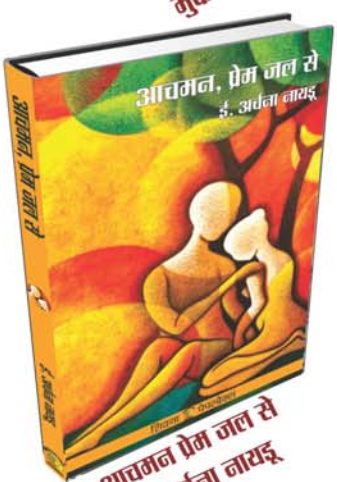

आचमन प्रेम जल से ई. अर्चना नायडू

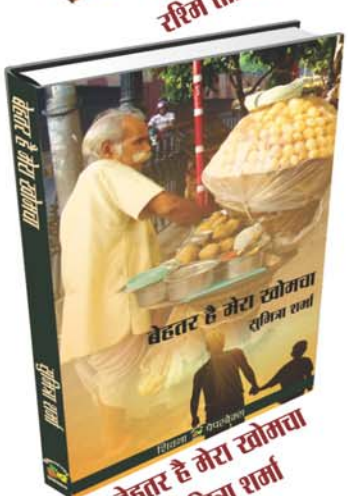

बेहतर है मेरा खोमचा सुमित्रा शर्मा

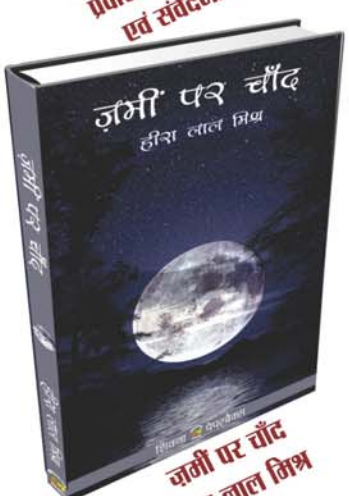

ज़मीं पर चाँद हीरा लाल मिश्र

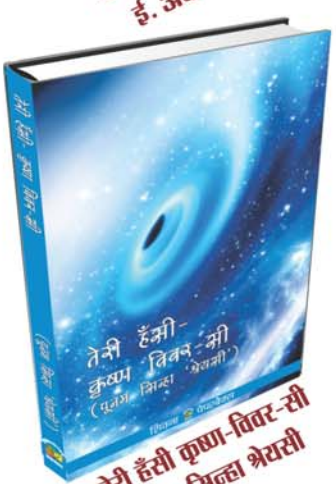

तेरी हँसी कृष्ण-बिंदर-सी पूनम सिन्हा श्रेयसी

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2018
6-14 जनवरी 2018
प्रगति मैदान, नई दिल्ली

नई दिल्ली के प्रगति मैदान पर आयोजित होने वाले "नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2018" में लेखक मंच पर आयोजित कार्यक्रम में शिवना प्रकाशन के नए सेट की पुस्तकों का विमोचन किया जाएगा।

शिवना प्रकाशन कार्यक्रम
"पुस्तक विमोचन समारोह"
लेखक मंच, हॉल क्रमांक 12
दिनांक : 9 जनवरी 2018
समय : 12:45 से 2:15 तक
मुख्य अतिथि :
डॉ. प्रेम जनमेजय
अध्यक्षता :
डॉ. सुशील सिद्धार्थ
संचालन : शहरयार

***

विभोम-स्वर कार्यक्रम
"अनुवाद की आवाजाही हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी साहित्य के बीच"
लेखक मंच, हॉल क्रमांक 12
दिनांक : 12 जनवरी 2018
समय : 12:45 से 2:15 तक
मुख्य अतिथि :
सबूहा ख़ान (उर्दू)
अध्यक्षता :
तरुण पिथोड़े (अंग्रेज़ी)
वक्ता : गीताश्री (हिन्दी), प्रज्ञा (हिन्दी), ज़ेबा अल्वी (उर्दू)
संचालन : पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Shivna Sahityiki • Quarterly • January-March 2018 • RNI : MPHIN/2016/67929 • ISSN : 2455-9717

शिवना प्रकाशन : जुलाई 2017 में प्रकाशित सेट की पुस्तकें

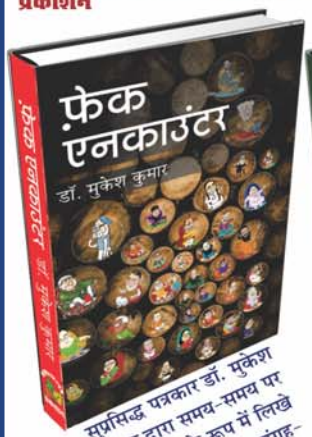

सुप्रसिद्ध पत्रकार डॉ. मुकेश कुमार द्वारा समय-समय पर साक्षात्कार के रूप में लिखे गए व्यंग्य लेखों का संग्रह-
फ़ेक एनकाउंटर
मूल्य : 300 रुपये
पेपरबैक संस्करण

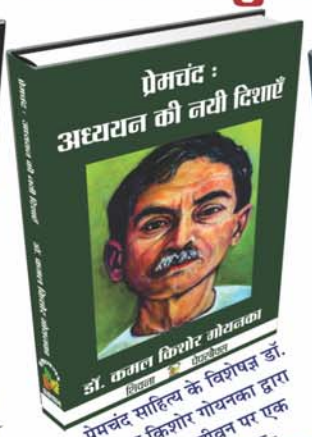

प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ डॉ. कमल किशोर गोयनका द्वारा प्रेमचंद के जीवन पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक-
प्रेमचंद: अध्ययन की नई दिशाएँ
मूल्य : 475 रुपये
पेपरबैक संस्करण

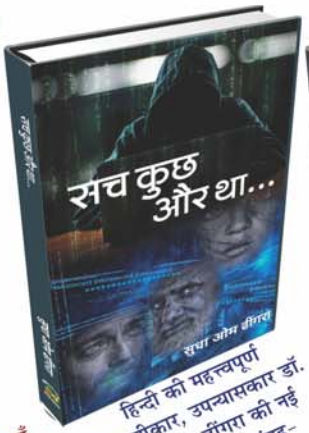

हिन्दी की महत्त्वपूर्ण कहानीकार, उपन्यासकार डॉ. सुधा ओम ढींगरा की नई कहानियों का संग्रह-
सच कुछ और था...
मूल्य : 250 रुपये
सजिल्द संस्करण

चर्चित कहानीकार तथा उपन्यासकार पंकज सुबीर की नौ नई कहानियों का संकलन-
चौपड़े की चुड़ैलें
मूल्य : 250 रुपये
सजिल्द संस्करण

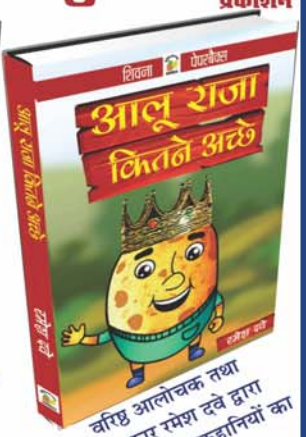

वरिष्ठ आलोचक तथा कथाकार रमेश दवे द्वारा लिखी गई बाल कहानियों का संग्रह-
आलू राजा कितने अच्छे
मूल्य : 49 रुपये
पेपरबैक संस्करण

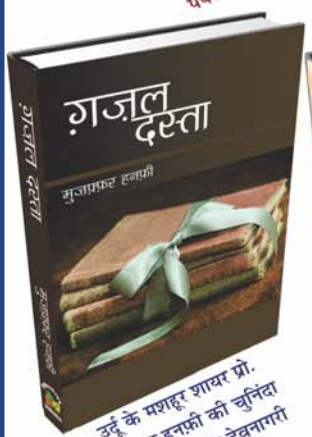

उर्दू के मशहूर शायर प्रो. मुज़फ़्फ़र हनफ़ी की चुनिंदा ग़ज़लों का संग्रह देवनागरी लिपि में-
ग़ज़ल दस्ता
मूल्य : 220 रुपये
पेपरबैक संस्करण

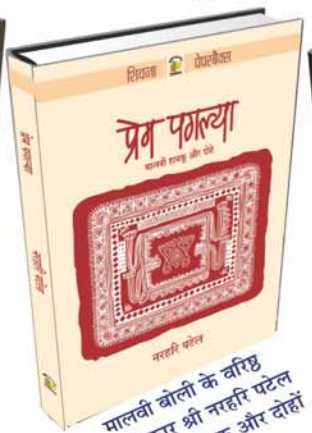

मालवी बोली के वरिष्ठ साहित्यकार श्री नरहरि पटेल के मालवी हायकु और दोहों का संग्रह-
प्रेम पगाल्या
मूल्य : 200 रुपये
पेपरबैक संस्करण

सुप्रसिद्ध शायरा, कवयित्री तथा अभिनेत्री लता हया की आधुनिक कविताओं का संग्रह-
मॉडर्न अबला
मूल्य : 220 रुपये
पेपरबैक संस्करण

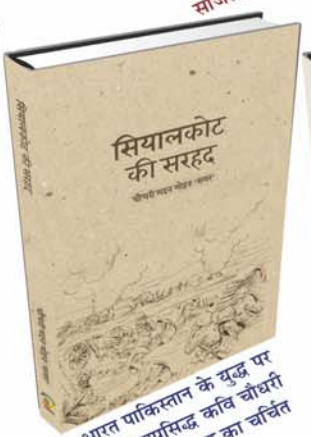

भारत पाकिस्तान के युद्ध पर केंद्रित सुप्रसिद्ध कवि चौधरी मदन मोहन समर का चर्चित खण्ड काव्य-
सियालकोट की सरहद
मूल्य : 220 रुपये
सजिल्द संस्करण

डॉ. आज़म की ग़ज़ल के व्याकरण पर एक ज़रूरी किताब-
शब्द, शुद्ध उच्चारण एवं पदभार
मूल्य : 350 रुपये
सजिल्द संस्करण

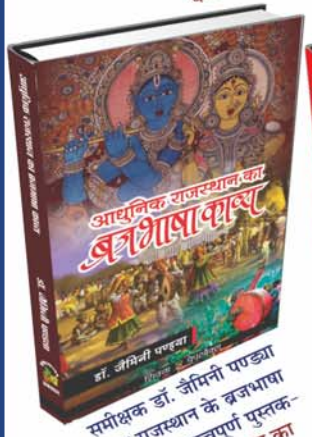

समीक्षक डॉ. जैमिनी पण्ड्या द्वारा राजस्थान के ब्रजभाषा काव्य पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक-
आधुनिक राजस्थान का ब्रजभाषा काव्य
मूल्य : 450 रुपये
पेपरबैक संस्करण

युवा लेखक राजेश सोनवार का प्रेम तथा जीवन के द्वंद्व की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास-
दो जुलाई दो हज़ार पाँच
मूल्य : 200 रुपये
पेपरबैक संस्करण

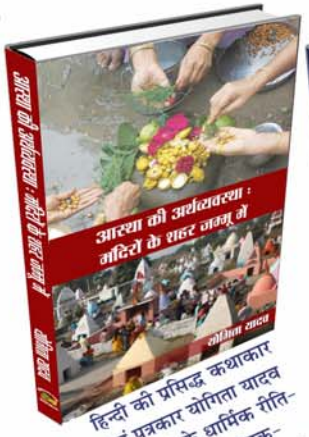

हिन्दी की प्रसिद्ध कथाकार एवं पत्रकार योगिता यादव द्वारा जम्मू के धार्मिक रीति-रिवाजों पर पुस्तक-
आस्था की अर्थव्यवस्था
मूल्य : 200 रुपये
सजिल्द संस्करण

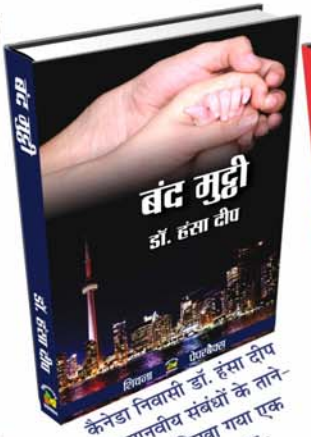

कैनेडा निवासी डॉ. हंसा दीप द्वारा मानवीय संबंधों के ताने-बाने पर लिखा गया एक रोचक उपन्यास-
बंद मुट्ठी
मूल्य : 275 रुपये
पेपरबैक संस्करण

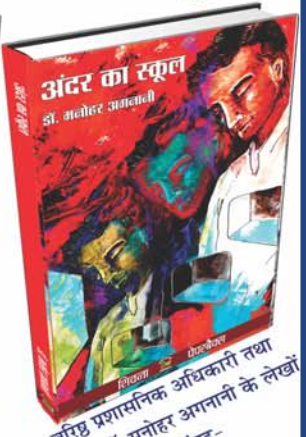

वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी तथा लेखक डॉ. मनोहर अगनानी के लेखों का संग्रह-
अंदर का स्कूल
मूल्य : 150 रुपये
पेपरबैक संस्करण

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।